वैदिक वाङ्मय में विष्णु का स्वरूप

डी० फिल्० उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धाता

उमानाथ दूबे

निर्देशक

डॉ० राम किशोर शास्त्री
व्याख्याता

संस्कृत – विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९२

आत्म-निवेदन

वेद भारतीय संस्कृति के प्राण हैं । वेदों का विष्णु ही, ब्राह्मणों का प्रजापति, आरण्यकों का कश्यप तथा उपनिषदों का परब्रह्म है । वैदिक वाङ्मय में विष्णु के इस परिवर्तमान स्वरूप के यथार्थ निर्धारण का प्रकृत शोध-प्रबन्ध में आयासपूर्वक प्रयत्न किया गया है । यह विद्वत्समुदाय को कितना प्रभावित कर सकेगा ? यह तो पूर्णतया भविष्य के गर्भ में है ।

भगवती भागीरथी, कालिन्दी एवम् अन्त:सलिला सरस्वती के पावन सङ्गम के समीप महर्षि भारद्वाज की पुण्यभूमि पर स्थित इलाहाबाद विश्वविद्यालय में, विश्वविद्यालयीय शिक्षा के उष:काल में ही मुझे सौभाग्यवशात पूज्यपाद गुरुवर्य डॉक्टर राम किशोर शास्त्री का वरदहस्त प्राप्त हो गया । गुरुदेव के सतत सान्निध्य के कारण मेरी देववाणी संस्कृत के अध्ययन में प्रवृत्ति हुई । अगाध वैदिक साहित्य में मेरी यत्किञ्चिद् योग्यता है । वह उसी का सहज परिणाम है । आज इन्हीं के आधार पर भारतीय संस्कृति सर्वदा पल्लवित-पुष्पित होती रही है । वेदों में यद्यपि अनेक देवों का यथास्थान वर्णन उपलब्ध होता है किन्तु इनमें केवल 'विष्णु' ही ऐसे देव हैं, जिनके आभामण्डल ने परवर्तीकाल में जन-जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है । वस्तुत: उन्हीं महान् गुरुवर्य की छाया में पुष्पित एवं पल्लवित होता हुआ, मैं प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में समर्थ हो सका ।

उनके प्रति कृतज्ञता के कुछ भी शब्द कहकर मैं अनृण नहीं होना चाहता हूँ ।

संस्कृत जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् गुरुवर्य प्रोफेसर सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुत्रवत् स्नेह ने शोध-कार्य के पूर्ण होने में मेरे लिए उत्प्रेरक का कार्य किया है, उन पूज्यपाद गुरुवर्य के लिए आभार व्यक्त करना मेरी धृष्टता ही होगी क्योंकि उन्हीं की प्रेरणा और सद्भावना से ही तो यह गुरुतर कार्य पूर्ण हो सका है ।

माता और पिता के ऋण से कोई भी प्राणी अद्यावधि मुक्त नहीं हो सका है । स्वर्गादपि गरीयसी ममतामयी माँ श्रीमती सरस्वती दूबे एवम् महनीय पितृ-चरण श्री राम सुन्दर दूबे, जिन्होंने मेरी प्रत्येक बाधाओं को दूर करते हुए मुझे शोधकार्य हेतु पूर्ण अवसर प्रदान किया, के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करने की धृष्टता नहीं करना चाहता हूँ । विशेषत: माताजी, जिनका वात्सल्यपूर्ण स्नेह ही यत्किञ्चित् योग्यता प्राप्त करने का मूल आधार रहा है । सम्भवत: उनके स्नेह के अभाव में शोध प्रवृत्ति ही न हुई होती, अत: वात्सल्यपूर्ण माँ से मुक्ति तो जन्मान्तर में भी संभव नहीं है ।

पण्डित-प्रवर आचार्य राम उजागिर वर्मा द्वारा दिये गये स्नेह संवलित प्रोत्साहन के प्रति साभार प्रणिपात करना मेरा पवित्र कर्त्तव्य है । परमादरणीय

अग्रज श्रीयुत ज्ञान प्रकाश द्विवेदी ने अनेक झंझावातों को सहते हुए भी अग्रजत्व का पूर्ण निर्वाह किया है, जिसके लिये मैं हृदयेन श्रद्धावनत हूँ। इस अवसर पर अध्ययन काल में मनोविनोद करने वाले प्रिय अखिलेश एवम् विजयलक्ष्मी पण्डित का स्मरण करना भी मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

अन्त में, श्री सिद्धेश्वरी शङ्कर यादव को टङ्कणार्थ धन्यवाद ज्ञापित करके सम्पूर्ण ज्ञाताज्ञात हितैषियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए प्रकृत शोध-प्रबन्ध को सुधीजनों के समक्ष नीर-क्षीर विवेक हेतु प्रस्तुत करने का कर्त्तव्य निभा रहा हूँ।

रक्षाबन्धन

विक्रम सम्वत्

२०४६

विनयावनत

उमानाथ दुबे

(उमानाथ दुबे)

विषयानुक्रमणिका

अध्याय		विषय		पृष्ठांक
	:	आत्म-निवेदन		
प्रथम	:	अ. प्रस्तुत विषय के अध्ययन की आवश्यकता एवम् महत्त्व		1-8
	:	ब. उपलब्ध ग्रन्थ		8-13
		1. उपलब्ध संहिताएँ	8- 9	
		2. उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ	9-10	
		3. उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ	11	
		4. उपलब्ध उपनिषद् ग्रन्थ	11-13	
		स. वैदिक देवों का वर्गीकरण		13-19
		1. महान् एवम् लघु देवता	15	
		2. पुरुष एवम् स्त्री देवता	15	
		3. संख्या के आधार पर एकल देवता, युगल देवता, गण देवता	15-17	
		4. स्थान के आधार पर द्युस्थानीय देवता, अन्तरिक्ष देवता, पृथिवी स्थानीय देवता	17-18	
		5. भौतिक एवम् मानसिक देवता	18	
		6. याज्ञिक एवम् अयाज्ञिक देवता	18	
		7. ब्लूमफील्ड एवम् कीथ महोदय के अनुसार देवों का वर्गीकरण	19	

अध्याय	विषय		पृष्ठांक
द्वितीय :	वेदों में विष्णु का स्वरूप		20-71

	क. ऋग्वेद में विष्णु का स्वरूप	20-36	
	1. विक्रमणकर्त्ता के रूप में विष्णु	21-27	
	2. सूर्य के रूप में विष्णु की कल्पना	27-30	
	3. इन्द्र के मित्र के रूप में विष्णु	30-33	
	4. श्री: (लक्ष्मी) के साथ विष्णु	33-36	
	ख. यजुर्वेद में विष्णु का स्वरूप	37-55	
	1. यज्ञों में विष्णु का स्वरूप	39-44	
	2. विक्रमणकर्त्ता के रूप में विष्णु	44-47	
	3. विष्णु का यज्ञ वराह रूप	47-50	
	4. विश्व-रचयिता के रूप में विष्णु	51	
	5. विष्णु के वाहन गरूड़ की विशेषता	52-55	
	ग. सामवेद में विष्णु का स्वरूप	55-58	
	घ. अथर्ववेद में विष्णु का स्वरूप	58-71	
	1. यज्ञीय देवमण्डल में विष्णु	63-64	
	2. इन्द्र के साथ विष्णु	64-65	
	3. वरूण के साथ विष्णु	65-66	

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
	4. अग्नि के साथ विष्णु	66
	5. सिनीवालि का विष्णु से सम्बन्ध	67
	6. भ्रूणरक्षक विष्णु	68
	7. विष्णु का सुदर्शन चक्र	69-70
	8. श्रीधारक विष्णु	70-71
तृतीय :	ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु का स्वरूप	73-110
	1. विष्णु का शब्दार्थ	78-85
	2. विष्णु का तीनों लोकों पर पाद-प्रक्षेप	85-88
	3. यज्ञ से तादात्म्य एवम् व्यापनशीलता	88-96
	4. अवतारवाद के रूप में विष्णु	96-104
	अ. विष्णु का वाराह रूप	97-99
	ब. विष्णु का मत्स्यावतार	99-102
	स. विष्णु का कूर्मावतार	102-104
	द. विष्णु के अवतार सम्बन्धी कहानियों की उपादेयता	104-105
	5. विष्णु द्वारा पशुओं की प्राप्ति	105-106 105×106
	6. श्री: (लक्ष्मी) के साथ विष्णु	106 106-109
	7. वेदों से ब्राह्मणगत विष्णु का वैशिष्ट्य	109-110

अध्याय		विषय		पृष्ठांक
चतुर्थ	:	आरण्यकों में विष्णु का स्वरूप		112-126
		1. यज्ञों में विष्णु का स्वरूप	113-118	
		2. विष्णु का अवतारवाद	118-122	
		3. क. कूर्मावतार	118-120	
		ख. नृसिंहावतार	120-122	
		3. पृथिवी उद्धारक के रूप में विष्णु	122-123	
		4. विष्णु की आदित्यरूप में कल्पना	123-125	
		5. ब्राह्मण से आरण्यकगत विष्णु का वैशिष्ट्य	125-126	
पञ्चम	:	उपनिषदों में विष्णु का स्वरूप		128-143
		1. विष्णु का परमपद	132-136	
		2. गर्भाधान के समय विष्णु का आह्वान	136-140	
		3. नारायण के रूप में विष्णु	140-143	
षष्ठ	:	वैदिक एवम् पौराणिक साहित्य में विष्णु		145-190
सप्तम	:	उपसंहार		191-196

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
:	अधीत ग्रन्थ माला	198-203
	क. वैदिक ग्रन्थ	
	ख. पौराणिक ग्रन्थ	
	ग. सहायक ग्रन्थ	
	घ. अंग्रेजी ग्रन्थ	

प्रथम अध्याय

अ. प्रस्तुत विषय के अध्ययन की आवश्यकता एवम् महत्त्व ।

ब. उपलब्ध ग्रन्थ

1. उपलब्ध संहितायें
2. उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ
3. उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ
4. उपलब्ध उपनिषद्

स. वैदिक देवों का वर्गीकरण

1. महान् देवता एवम् लघु देवता
2. पुरुष एवम् स्त्री देवता ।
3. संख्या के आधार पर (द्युस्थानीय देवता, युगल देवता, गण देवता)
4. स्थान के आधार पर (द्युस्थानीय देवता, अन्तरिक्ष स्थानीय देवता, पृथ्वी स्थानीय देवता)
5. भौतिक एवम् मानसिक देवता ।
6. याज्ञिक एवम् अयाज्ञिक देवता ।
7. ब्लूम फील्ड एवम् कीथ महोदय के अनुसार देवों का वर्गीकरण

प्रस्तुत विषय के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

मानव प्रकृति से ही मननशील प्राणी है । विश्व का विशाल साहित्य उसके हजारों वर्षों के अनवरत गाढ़ चिन्तन की अमूल्य निधि है । भारतीय परम्परा के अनुसार वेद परमात्मा के निःश्वास हैं ।[1] उनका निर्माण किसी ने नहीं किया है । ऋषियों की दिव्य दृष्टि ने उस ज्ञान का मानस प्रत्यक्ष करके शाब्दिक वर्णन किया है । सृष्टि के प्रारम्भ में लोकहित के लिए परमात्मा ने मनुष्यों को यह ज्ञान राशि प्रदान की । इसी ज्ञान राशि की दृढ़ आधार शिला पर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का विशाल प्रासाद स्थिर है । मनुष्यों के आचार-विचार, कर्म-धर्म, रहन-सहन आदि को सम्यक् रूपेण ज्ञात करने के लिए वेदों का ज्ञान अत्यावश्यक है ।

वैदिक साहित्य का विश्व के साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण स्थान है । यह कहना समीचीन ही होगा कि वेद भारतीय मनीषियों ही नहीं अपितु विश्व मनीषियों के लिए ज्ञान स्रोत रहे हैं । वैसे तो भारतीय सभ्यता के विकास में अपनी प्राचीनता और अपने बहुमुखी व्यापक प्रभाव के कारण वैदिक धारा का निर्विवाद रूप से अत्यधिक महत्त्व है । न केवल अपने सुगन्धित, सुरक्षित और विस्तृत वाङ्मय की अति प्राचीन परम्परा के कारण ही, न केवल अपनी भाषा एवं वाङ्मय के अतिव्यापक प्रभाव के कारण ही, अपितु भारत के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अपने शाश्वतिक प्रभाव के कारण भी भारतीय संस्कृति में वैदिक धारा का

---

1. अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् । ऋग्वेद-

सर्वदा से अत्यधिक महत्त्व रहा है और बराबर रहेगा ।

वेद अपौरुषेय हैं जो प्रकृति सहचरी के सुन्दर आँचल में विद्यमान सम्प्रधान तपोभूमि में त्याग और सन्तोष का अक्षय पाथेय लेकर आजीवन तपस्या करने वाले ऋषियों के द्वारा तप: सूत सिद्धावस्था में प्रशान्त अन्त: करण में साक्षातकृत ज्योति: स्वरूप मन्त्रों के पुण्यागार हैं । वेदों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ऋषियों को प्राकृतिक शक्ति प्राप्त थी तथा दैवी शक्ति के सहारे उन्होंने वैदिक मन्त्रों का दर्शन किया । वेदों के मर्मज्ञ सभी आश्रमों में ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं ।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में उल्लिखित है कि "मैं स्वयं कहती हूँ कि देव और मानव सभी मेरी उपासना करते हैं, मेरा आश्रय लेते हैं, मेरा उपयोग करते हैं । मेरी जिस पर दया दृष्टि होती है उसे उग्र कर देती हूँ । उसको ब्रह्मर्षि, मेधावी तथा प्रतिभाशाली बना देती हूँ ।"[1]

स्वयं वेदों में वेद का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है कि वेद भगवान के नि:श्वास हैं ।

---

1. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभि: ।
   यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ऋग्वेद-10-125-6.

श्वेताश्वतर उपनिषद् में उल्लेख है कि भगवान् सर्वप्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न कर लोक शिक्षा के लिए वेद देते हैं ।[1] वेद सभी विद्याओं और कलाओं का मूल है । वेदों का अध्ययन न करने से पाप होता है । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि-सम्पूर्ण पृथ्वी को दान करने से जो लाभ होता है वही वेदों के अध्ययन से प्राप्त होता है । इससे भी बढ़कर उसे अक्षय लोक की प्राप्ति होती है ।[2] परम्परागत भारतीय मान्यताओं के अनुसार वेदों के वाक्यों पर सन्देह नहीं किया जा सकता । वे स्वतः प्रमाण हैं । जो कुछ उनमें कहा गया है वह परम सत्य है ।

ऋचायें वैदिक वाङ्मय के रमणीय कलेवर में भावपूर्ण अर्थ सौष्ठव, परिष्कृत भाषा तथा छन्द की श्रुति मधुर ध्वनि से विश्व को गौरव गरिमा प्रदान कर आध्यात्मिक जीवन में ज्ञान की सुधाधारा प्रवाहित कर रही हैं ।

भारतीयों के अन्तरतम का परिपूर्ण ज्ञान कराने के लिए सहस्त्राब्दियों से प्रचलित इस साहित्य का जब तक रसास्वादन नहीं कर लिया जाता तब तक वह ज्ञान अपूर्ण ही रहता है । मनुस्मृतिकार ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि'धर्म विषयक

---

1. यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । श्वेताश्वतर उपनिषद् 6-8.
2. यावन्तं हवै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णदहत लोकं जयति ।
   त्रिभिस्तावन्तं जयति, भूयांसम् च अक्षय्यं च एवं
   विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥
   शतपथ ब्राह्मण-11-5-61.

जिज्ञासा के लिए श्रुति ही प्रमाण हैं ।

भारतीय -मनीषा सांसारिक जीवन यापन करते हुए भी मोक्ष की सतत कामना करता है, जो वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान से ही प्राप्त होता है ।

ऋग्वेद में बताया गया है कि भाग्यशालियों को स्वर्ग में वीणा का स्वर तथा संगीत सुनाई पड़ता है ।[1] अथर्ववेद में प्रतिपादित है कि स्वर्ग में घृत से भरे सरोवर तथा दुग्ध मधु और मदिरा की नदियाँ बहती है ।[2]

अथर्ववेद में ही अन्यत्र उल्लेख है कि स्वर्ग में न धनवान, न शक्तिशाली और न ही शोषित हैं ।[3] ईशावास्योपनिषद् में भी कहा गया है कि उस अवस्था में एकत्व देखने वाले पुरूष को शोक और मोह नहीं हो सकता । आत्मा और परमात्मा का ऐक्य-भाव ही उपनिषदों में मोक्ष है ।[4] मोक्ष ज्ञान से ही साध्य है ।[5]दार्शनिक दृष्टिकोण

---

1. ऋग्वेद-4-8-37.
2. घृतह्रदा मधुकूला: सुरोदका: क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उपयन्त सर्वा: स्वर्ग लोके मधुमत् पिन्वमाना उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणी: समन्ता: ।
   अथर्ववेद-4-34-6.
3. यो ददाति शिति पादमविं लोकेन संमितम ।
   स नाकमभ्यरोहितयत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ।। अथर्ववेद-3-29-3.
4. तत्र मोह: क: शोक: एकत्वमनुपश्यत । ईशावास्योपनिषद्-7.
5. विद्ययाऽमृतमश्नुते-ईशावास्योपनिषद्-11.

से भी वेद मानव की प्रखर मेधा एवं बुद्धि के विस्तार की सीमाएं हैं, भारतीय दर्शन में वेदों को अपौरूषेय माना गया है । आस्तिक तथा नास्तिक दर्शन का विभाजन भी वेद के आधार पर ही हुआ है । दार्शनिकों को ईश्वर का विरोध तो सह्य है किन्तु वेद का विरोध असह्य है । महर्षि मनु के अनुसार वेदों की प्रामाणिकता में अविश्वास करने वाला ही नास्तिक है ।[1]

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं । ब्राह्मणों के बिना वैदिक मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता, यथा-सूत्र का भाष्य के बिना । अतः वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण वाङ्मय भी महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है । वेदों और ब्राह्मणों के साथ आरण्यकों का परिशीलन भी अनिवार्य है । आरण्यकों का प्रधान विवेच्य विषय यज्ञों के गूढ और लाक्षणिक विवेचन के साथ-साथ पुरोहित वर्ग की विचारधारा के दार्शनिकता को प्रदर्शित करना था । इसमें प्राणविद्या की महिमा विशेष रूप से गायी गई है । प्राणविद्या की साधना एकान्त एवम् शान्त वातावरण में होती है । इस विद्या का मूल ऋग्वेद में मिलता है ।[2]

---

1. नास्तिको वेद-निन्दकः । मनुस्मृति-
2. यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणोवसति तावदायुः । कौषीतकि उपनिषद्-1-2.

प्राण विश्व का धारक तथा रक्षक है । आरण्यक एवं उपनिषद् साहित्य परस्पर इतने संश्लिष्ट है कि इनकी पृथक् सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती । वैदिक साहित्य में उपनिषदें सबसे अर्वाचीन साहित्य के रूप में मानी जाती हैं ।उपनिषदें आत्मा एवम् ब्रह्म ऐक्य प्रतिपादन के साथ-साथ शरीर से उसका पार्थक्य भी प्रतिपादित करती हैं । यह आत्मा को अखण्ड, अद्वितीय एवम् सर्वव्यापक मानती है तथा ब्रह्म को अनन्त दिव्य शक्ति मानती हैं ।

"तत्त्वमसि" इस महावाक्य के द्वारा आत्मा और ब्रह्म का अभेद प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण-साहित्य गार्हस्थ्य जीवन में होने वाले कर्मकाण्ड की व्याख्या है तो आरण्यक एवम् उपनिषद् साहित्य एकान्त निर्विच्छिन्न अरण्य में ब्रह्मचर्य से वानप्रस्थियों का गम्भीर भौतिक चिन्तन है ।

वस्तुत: वैदिक वाङ्मय वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जहाँ से ज्ञान की निर्मल मंदाकिनी विश्व के दार्शनिकों के अन्त:करण को आप्लावित करती हुई आज भी अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है ।

नष्ट वेदों के उद्धार के लिए भगवान विष्णु ने स्वयं मत्स्य या हयग्रीव अवतार ग्रहण करके वैदिक वाङ्मय की रक्षा की । अत: वैदिक साहित्य में विष्णु के किन स्वरूपों का कैसे वर्णन किया गया है? इसका अध्ययन करना ही प्रकृत शोध का विषय है ।

यद्यपि अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि संहिता भाग की अपेक्षा ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु का महत्त्व कहीं अधिक है जो परवर्ती वैदिक साहित्य में निरन्तर बढ़ता गया है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में उन्हें नारायणादि उपाधियों से विभूषित करके परम् तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है । महर्षि अरबिन्द के अनुसार उपनिषदों एवं पुराणों में प्राप्त वैदिक देवता किसी न किसी मनोवैज्ञानिक विचारों से संबंधित हैं । वेदों में विष्णु सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर गये हैं । विष्णु को समस्त विश्व का संरक्षक कहा गया है । वेदों का विष्णु ब्राह्मणों का प्रजापति सूर्य एवम् आरण्यकों का कश्यप है । यही उपनिषदों का परब्रह्म है ।[1]

विष्णु पुराण में तो यहाँ तक कहा गया है कि अव्यक्त रूप भगवान् विष्णु (जगत्पति) ही हिरण्यगर्भ रूप से उस अण्ड में स्वयमेव विराजमान रहते हैं और रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा के रूप में सृष्टि की रचना के लिए उद्यत होते हैं ।[2] विष्णु ही

---

1. महर्षि अरविन्द-आन दि वेद-पृष्ठ संख्या-46.
2. ऋग्वेद-1-55-1.

वरद, वरिष्ठ वरेण्य हैं । विष्णु अच्छे मित्र भी हैं । उन्होंने इन्द्र की मित्रता निभाने के लिए सौ भैंसों का मांस पकाया ।[1] ऋग्वेद के एक मन्त्र में विष्णु और इन्द्र को अदम्य कहा गया है । विष्णु को गिरिष्ठा तथा उरूक्रम भी कहा गया है ।

विष्णु की इसी व्यापकता, कालातीतत्वरवम् विश्ववन्दनीयत्वम् स्वरूप को लक्ष्य करके वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित देवमण्डल में विष्णु की क्या स्थिति है? इसी जिज्ञासा के वशीभूत होकर मेरी भी प्रकृत शोध विषय में प्रवृत्ति हुई ।

(ब) उपलब्ध संहितायें :-

150 ईसा पूर्व में आचार्य पतञ्जलि के महाभाष्य में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का निर्देश है ।[2] किन्तु परवर्ती साहित्य में केवल 5 शाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है । 1. शाकल 2. वाष्कल. 3. माण्डुकायन 4. आश्वलायन 5. सांखियायन ।

वर्तमान में शाकल एवं सांखियायन शाखा ही उपलब्ध हैं । यद्यपि सांखियायन शाखा से सम्बद्ध संहिता है किन्तु इसके ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं ।

---

1. मैकडानल- वैदिक मैथालोजी-पृष्ठ संख्या-74.
2. एकविंशतिधा वाह्वृर्यम् ।
   महर्षि पतञ्जलि के व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक

महर्षि पतञ्जलि ने यजुर्वेद के शत शाखाओं का उल्लेख अपने महाभाष्य में किया है ।[1] लेकिन इसकी पाँच शाखायें ही सम्प्रति उपलब्ध हैं । कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएं तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी और कपिष्ठल हैं । शुक्ल यजुर्वेद की एक शाखा वाजसनेयी है । महर्षि शौनक तथा पतञ्जलि ने सामवेद के सहस्त्र शाखाओं का उल्लेख किया है ।[2] परवर्ती ग्रन्थों में भी 13 आचार्यों की 13 शाखाओं का उल्लेख मिलता है, परन्तु सम्प्रति तीन शाखाओं की उपलब्धता के प्रमाण मिलते हैं । 1. कौथुमीय 2. जैमिनीय 3. राणायनीय ।

आचार्य पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में अथर्ववेद के नौ शाखाओं का वर्णन किया है ।[3] किन्तु आज इन नौ शाखाओं में दो ही शाखायें उपलब्ध होती हैं ।

1. शौनक 2. पिप्पलाद

2. उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ -शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वैदिक मन्त्रों या ऋचाओं की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण है ।[4] दूसरे अर्थों में याज्ञिक कर्मकाण्डों की विस्तृत

---

1. एकशतमध्वर्युशाखा: । महर्षि पतञ्जलि व्याकरण महाभाष्य के-पस्पशाह्निक पं0 भगवद्दत्त-वैदिक वाङ्मय का इतिहास-पृष्ठ संख्या-157.
2. सहस्त्रवर्त्मासामवेद: । महर्षि पतञ्जलि व्याकरण महाभाष्य
3. सामवेदस्य किल सहस्त्र भेदा: भवन्ति एष्व अनाध्यायेषु अधीयान: ते शतक्रतु वज्रेणाभिहता: महर्षि शौनक-चरण व्यूह
4. ब्रह्म वै मन्त्र: । शतपथ ब्राह्मण-{7-1-1-15}

व्याख्या प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण है । वेदों में सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है ।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या दो है । 1. ऐतरेय ब्राह्मण 2. कौषीतकी §सांख्यायन§

यजुर्वेद के दोनों शाखाओं के भिन्न-भिन्न ब्राह्मण हैं । कृष्ण यजुर्वेद का तैत्ति-रीय ब्राह्मण ही एक मात्र उपलब्ध ब्राह्मण है । कुछ ग्रन्थों में काठक ब्राह्मण का भी उल्लेख है परन्तु उपलब्ध नहीं है । शुक्ल यजुर्वेद का एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है शतपथ ब्राह्मण । वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद के बाद इस ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ स्थान है । इसकी दो शाखायें उपलब्ध हैं । प्रथम काण्व, द्वितीय माध्यन्दनीय। कुमारिल भट्ट ने सामवेद के आठ ब्राह्मणों का निर्देश किया है । परन्तु चार ब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख अधिक मिलता है । उपलब्ध ब्राह्मण दो हैं । 1. ताण्ड्य 2. जैमिनीय ।

आचार्य कुमारिल ने सामविधान नामक ब्राह्मण का भी उल्लेख किया है । इन ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त दैवत, उपनिषद, संहितोपनिषद आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम पुस्तकों में मिलता है । ये स्वल्पाकार रचनायें हैं ।

अथर्ववेद का केवल एक ब्राह्मण उपलब्ध है जिसका नाम गोपथ ब्राह्मण है । इसके भी दो भाग हैं । 1. पूर्व गोपथ 2. उत्तर गोपथ । वेदों के इन उपलब्ध ब्राह्मणों

के अतिरिक्त कुछ ग्रन्थों में ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है ।

वेदों से सम्बद्ध आरण्यकों का परिचय निम्नाङ्कित है । ऋग्वेद के प्राप्त आरण्यक दो हैं । 1. ऐतरेय आरण्यक 2. साङ्ख्यायन। ऐतरेय में पाँच आरण्यकों का संश्लेष है । प्रारम्भिक तीन आरण्यकों के रचयिता स्वयम् महर्षि ऐतरेय हैं तथा चतुर्थ के आश्वलायन एवम् पन्चम के शौनक ऋषि हैं । साङ्ख्यायन भी ऐतरेय के समान है ।

यजुर्वेद के दोनों शाखाओं के एक-एक आरण्यक प्राप्त होते हैं जो प्रकाशित हैं । कृष्ण यजुर्वेद का आरण्यक तैत्तिरीय आरण्यक है, शुक्ल यजुर्वेद का आरण्यक वृहदारण्यक है ।

सामवेद का एक ही आरण्यक उपलब्ध है । तावल्कार अथर्ववेद का कोई भी आरण्यक उपलब्ध नहीं है । इस प्रकार कुल पाँच आरण्यक उपलब्ध एवम् प्रकाशित हैं ।

उपनिषद् साहित्य का सर्वाधिक अर्वाचीन उपनिषद् मुण्डकोपनिषद् है जिसमें 108 उपनिषदों के नामों का उल्लेख है जो विभिन्न वेदों से इस प्रकार सम्बद्ध हैं ।

(क) ऋग्वेद 10 उपनिषद्

(ख) शुक्लयजुर्वेद 19 उपनिषद्

---

1. पं० बलदेव उपाध्याय-वैदिक साहित्य एवम् संस्कृति सन् (1955) पृष्ठ संख्या-313.

(ग) कृष्ण यजुर्वेद 33 उपनिषदें ।

(घ) सामवेद 16 उपनिषदें ।

(ङ.) अथर्ववेद 21 उपनिषदें ।

सर्वाधिक प्रामाणिक उपलब्ध उपनिषदों का क्रम इस प्रकार है । ऋग्वेद के दो उपनिषद् हैं- 1. ऐतरेय उपनिषद् 2. कौषीतकि उपनिषद् । सामवेद के भी दो उपनिषद् हैं- 1. छान्दोग्योपनिषद् 2. केनोपनिषद् ।

कृष्ण यजुर्वेद के तीन उपनिषद् हैं- 1. कठोपनिषद् 2. श्वेताश्वरोपनिषद् 3. मैत्रायणोपनिषद् । शुक्ल यजुर्वेद के उपनिषदों की संख्या दो है । 1. वृहदारण्यको-पनिषद् 2. ईशावास्योपनिषद् ।

अथर्ववेदीय उपनिषदों की संख्या सत्ताइस बताई गई है । परन्तु सभी उपलब्ध नहीं हैं । प्रमुख उपनिषद् इस प्रकार हैं- 1. मुण्डकोपनिषद् 2. प्रश्नोपनिषद् 3. माण्डूक्योपनिषद् ।

उपनिषद् साहित्य का विशद वर्णन कुछ विद्वानों ने किया है । इसमें उपनि-षदें चार भागों में विभक्त हैं -

<u>प्रथम वर्ग</u> : वृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, कौषीतकी हैं । ये सभी

गद्यमय हैं ।

द्वितीय वर्ग : केन, कठ, ईशावास्य, श्वेताश्वतर मुण्डकोपनिषद् हैं। ये छन्दबद्ध हैं ।

तृतीय वर्ग : प्रश्न, मैत्रायणी, माण्डूक्योपनिषद् हैं। ये सभी गद्यमय हैं ।

चतुर्थ वर्ग : इनके अन्तर्गत अथर्ववेदीय उपनिषदें आती हैं । इनकी प्रवृत्ति गद्य-पद्य उभयात्मक है ।

अत: तीन क्रमों में विद्वानों ने उपनिषदों का विभाजन किया है । दूसरा क्रम सर्वाधिक प्रामाणिक है ।

(स) वैदिक देवों का वर्गीकरण :

प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी स्वभाव से ही धर्म के प्रति आस्थावान् होता है । वेदों में धर्म का प्रधान विषय प्रकृति पूजा है । अतएव वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक शक्तियों को शक्ति के रूप में स्वीकारा गया है । बी०जी० रेले के अनुसार "सभी वैदिक देवता मनुष्य के स्नायु संस्थान के विभिन्न चेतना केन्द्रों तथा क्रियाओं के प्रतीक हैं ।[1] वैदिक देवों का वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया गया है ।

---

1. बी०जी० रेले, "वैदिक गाड्स एज दि फिगर्स आफ बायलोजी" (बम्बई से सन् 1931 में प्रकाशित) ।

1. संख्या के आधार पर :

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तीनों ही देवों की संख्या तैंतीस बताते हैं ।[1] इसी संख्या को अन्यत्र 11 का तीन गुना माना गया है । ऋग्वेद की एक ऋचा में निर्दिष्ट है कि 11 देवता स्वर्ग में, 11 पृथिवी पर, 11 अन्तरिक्ष में रहते हैं ।[2] अथर्ववेद भी यही कहता है ।[3] शतपथ एवम् ऐतरेय ब्राह्मण भी देवों का वर्गीकरण तीन कोटियों में करते हैं । प्रथम कोटि में 8 वसुगण, द्वितीय में 11 रूद्रगण, तृतीय में 12 आदित्यगण हैं । इसके अतिरिक्त द्यौस, पृथिवी एवम् प्रजापति को लेकर देवों की संख्या ब्राह्मणों में चौंतीस हो गई है । वेदों की अपेक्षा ब्राह्मणों में देवों की संख्या में वृद्धि हुई है ।[4] शतपथ ब्राह्मण प्रजापति या इन्द्र और प्रजापति को अन्तिम देवता के रूप में सम्मिलित करता है ।[5] ऐतरेय ब्राह्मण वषट्कार और प्रजापति को चौंतीसवाँ देवता मानता है ।[6] इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञवल्क्य ने देवों की संख्या

---

1. वेरीडेल कीथ - रिलीजन ऐण्ड फिलासफी आफ द वेद ऐण्ड उपनिषद् । अनुवादक (डा0 सूर्यकान्त) ।

2. पत्नीवतास्त्रिंशत त्रीञ्च देवाननुष्वधमावहमादयश्च । ऋग्वेद 3-6-9.

3. यस्य त्रयास्त्रिंशतास्तुवत अऽने सर्वेसमाहिता: । अथर्ववेद 1-9-13.

4. शतपथ ब्राह्मण - (4-5-7-2)

5. त्रयास्त्रिंशत् त्वेव देवा इति कतमेतेत्रयत्रिंशत् । अष्टौवसव: एकदश: रूद्र: द्वदशादित्या: त्रयास्त्रिशदिति । शतपथ ब्राह्मण (11-6-3-5)

6. ऐतरेय ब्राह्मण (2-18-8)

303 तथा 3003 तक मानी है । किन्तु उन्होंने कहा है कि वस्तुत: 303, 3003 उन्हीं देवताओं की महिमायें हैं । देवता वास्तव में 33 ही हैं । वैदिक देवों का उनकी सापेक्षिक महत्ता के आधार पर भी वर्गीकरण हो सकता है ।

1. महान् एवम् लघु देवता-यह विभाजन महान् एवम् लघु, युवा एवम् वृद्ध के रूप में है । वैदिक कवियों के अनुसार देवों की कोटि में भी विभिन्न पदों एवम् वर्गों की उपस्थिति स्वीकार की गई है । जबकि ऋग्वेद में मिलता है कि "तुममें से न कोई लघु है न ही युवा है" वरन् तुम सभी महान् हो ।[1]

2. स्त्री एवम् पुरूष देवता - इसके अन्तर्गत दो देव आते हैं उषस् एवम् इन्द्र ।

3. संख्या के आधार पर - ऋग्वेद में देवों को उनके नामों की आवृत्ति के आधार पर पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

(क) इन्द्र, अग्नि, सोम ।

(ख) आश्विन, वरूण, मरूत् ।

(ग) उषस्, सविता, वृहस्पति, सूर्य, पूषा ।

(घ) वायु, द्यावा, पृथिवी, विष्णु, रूद्र ।

(ङ) यम एवम् पर्जन्य ।

---

1. न हिवो अस्त्यर्भको देवासोन कुमारक: ।
विश्वे सतो महान्त इति ॥ ऋग्वेद (8-30-1)

ये देवता कभी अकेले प्रस्तुत होते हैं तो कभी अन्य देवों के साथ इनका स्तवन किया जाता है । इस प्रकार उनका विभाजन तीन वर्गों में किया गया है ।

1. <u>एकल देवता :</u>

द्यौ, वरूण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषा, विष्णु, विवस्वान्, उषस्, आश्विन्, इन्द्र, मित्र, आप्त्य, अपांनपात, मातरिश्वा, अहिर्बुधन्य, अजएकपाद, वायु, पर्जन्य, आप:, नदियाँ, पृथिवी, अग्नि, वृहस्पति, सोम, कतद्रेव, त्वष्टा, विश्वकर्मा, प्रजा-पति, मन्यु, श्रद्धा, अनुमार्त, अरमति, सूनृता, असुनीति, निऋति, काम, काल, प्राण, अदिति तथा देवियाँ-सरस्वती, रात्रि, वाक्, पुरंधि राका, कुहु, इन्द्राणी, अश्विनी आदि ।

2. <u>युगल देवता :</u>

दो देवताओं का व्यक्तित्व मिलकर एक हो गया और दोनों की विशेषतायें एक रूप हो गई हैं । यथा-मित्रावरूण, इन्द्र वरूण, इन्द्रसोम, इन्द्र विष्णु, सोमरूद्र, अग्निसोम, अग्निमरूत, इन्द्रावायु[1] आदि । इस प्रवृत्ति की सीमा वहाँ परिलक्षित

---

1. डॉ० जे० खोण्डा - दि डुआल डीटीज इन द रिलीजन आफ वेद ।
   -{अम्सटर्डम} 1974.

होती है जहाँ सभी देवता अपने व्यक्तित्व को खोकर 'विश्वेदेवा:' नामक एक स्वतन्त्र देवगण में बदल गये हैं ।[1]

3. गणदेवता :

जिन देवताओं की स्तुति सामूहिक रूप से होती है वे गण देवता होते हैं । यथा- मरूद्गण, रूद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, साध्य, ऋभु, विश्वेदेवा: आदि ।

4. स्थान के आधार पर :

यास्कादि विद्वानों ने ऋग्वेद के त्रिपदीय वर्गीकरण के आधार पर देवों के विभिन्न रूपों को तीन भागों (लोकों) में रखा हैं । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भी देवों का विभाजन इसी प्रकार निवास स्थान को आधार मानकर किया गया है । किन्तु एक स्थान पर उनके सप्त लोकों (भू:, भुव:, स्व:, मह:जन:, तप:,सत्यम् का विवरण प्राप्त होता है ।

अथर्ववेद भी पृथिवी,अन्तरिक्ष तथा आकाश के अतिरिक्त दिगन्तों, नक्षत्रों, जल तथा वृक्ष में भी देवों का निवास स्थान मानता है ।[2] अत: स्थान के आधार पर

---

1. ब्लूम फील्ड - ऋग्वेद (पृष्ठ संख्या 88)

2. ये देवा दिवि तिष्ठन्ति ये पृथिव्यां ये ।
अन्तरिक्ष ओषधीषु चशुषु अप्सु अन्त: ॥ अथर्ववेद (1-30-3)

देवों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है ।[1]

ॉकॉ द्युस्थानीय देव :

द्यौ, वरूण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषा, अपांनपात, विवस्वान, आदित्य-गण, उषस् , आविश्वनादि ।

ॉखॉ अन्तरिक्ष स्थानीय :

इन्द्र, त्रित, आप्त, अपांनपात्, मातरिश्वा, अहिर्बुधन्या, अजएकपाद, रूद्र, मरूत्, वायुवात, पर्जन्य, आप: आदि ।

ॉगॉ पृथ्वी स्थानीय देव :

नदियाँ, पृथिवी, अग्नि, बृहस्पति तथा सोमादि हैं ।[2]

5. भौतिक एवं मानसिक देवता :

यह दो भागों में हैं । ॉकॉ स्थूलमूर्त देवता ॉखॉ भावात्मक अमूर्त देवता ।[3]

6. याज्ञिक एवं अयाज्ञिक देवता :

इन्द्र एवं अपांनपात हैं ।

---

1. डॉ सूर्यकान्त - वैदिक देवशास्त्र ॉपृष्ठ संख्या 34-38ॉ

2. मैकडानल - वैदिक मैथालजी ॉपृष्ठ संख्या 34ॉ

3. डॉ राम कुमार राय - वैदिक पुराकथा शास्त्र ॉपृष्ठ संख्या 218ॉ

7. <u>ब्लूमफील्ड एवं कीथ के अनुसार :</u>

ब्लूमफील्ड महोदय ने देवों को पाँच भागों में विभक्त किया है ।[1]

(क) प्रागैतिहासिक काल के देवता : द्यौ, वरूण, मित्र, अर्यमा ।

(ख) अल्प पारदर्शीय या अर्ध स्पष्ट देवता : विष्णु ।

(ग) पारदर्शीय या स्पस्ट देवता : अग्नि, उषस्, वायु, सूर्य ।

(घ) अपारदर्शीय वा अस्पष्ट देवता : इन्द्र, वरूण, अश्विन ।

(ड) अमूर्त, भावात्मक एवम् प्रतीकात्मक देवता : प्रजापति, वृहस्पति, विश्वकर्मा, काल, श्रद्धा, काम या निऋति आदि ।

कीथ महोदय ने देवों को चार भागों में बाँटा है ।[2]

(क) द्युस्थानीय एवं अन्तरिक्ष तथा पृथिवी स्थानीय देवता ।

(ख) लघु प्रकृत देवता ।

(ग) भाव देवता ।

(घ) विभिन्न देव प्राणियो का वर्ग ।

---

1. ब्लूम फील्ड - ऋग्वेद (पृष्ठ संख्या 300)

2. कीथ - रिलीजन फिलासफी उपनिषद् एवं इण्डि0 भाष्य ।

---------::0::---------

द्वितीय अध्याय

वेदों में विष्णु का स्वरूप

क. ऋग्वेद में विष्णु का स्वरूप

1. विक्रमण कर्त्ता के रूप में विष्णु
2. सूर्य के रूप में विष्णु की कल्पना
3. इन्द्र के मित्र के रूप में विष्णु
4. श्री: (लक्ष्मी) के साथ विष्णु

ख. यजुर्वेद में विष्णु का स्वरूप

1. यज्ञों में विष्णु का स्वरूप
2. विक्रमणकर्त्ता के रूप में विष्णु
3. विष्णु का यज्ञ वराह रूप
4. विश्व-रचयिता के रूप में विष्णु
5. विष्णु के वाहन गरूड़ की विशेषता

ग. सामवेद में विष्णु का स्वरूप

घ. अथर्ववेद में विष्णु का स्वरूप

1. यज्ञीयदेवमण्डल में विष्णु
2. इन्द्र के साथ विष्णु
3. वरूण के साथ विष्णु
4. अग्नि के साथ विष्णु
5. सिनीवालि का विष्णु से सम्बन्ध
6. भ्रूणरक्षक विष्णु
7. विष्णु का सुदर्शन चक्र
8. श्रीधारक विष्णु

ऋग्वेद में विष्णु का स्वरूप

वैदिक वाङ्मय की सम्पूर्ण रचनाओं में ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन एवम् महत्वपूर्ण रचना है । इसमें पुरानी भारतीय अस्मिता, ज्ञान एवम् नैतिकता के समग्र चित्र मूर्तिमान हो उठे हैं । विशाल ग्रन्थ तपःपूत मुनियों के अन्तरतम का दर्पण है । प्राचीन ऋचाओं के इस वेद में 1028 सूक्त एवम् 10552 मन्त्र हैं । किन्तु कुछ विद्वान् सूक्तों की संख्या 1028 तथा मन्त्रों की संख्या लगभग 10600 मानते हैं ।[1] ऋग्वेद में कुल 10 मण्डल हैं । द्वितीय मण्डल से सातवें मण्डल के ऋषि क्रमशः गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वसिष्ठ हैं । अष्टम मण्डल का सम्बन्ध प्रायः कण्व ऋषि के वंश से है । नवम मण्डल का सम्बन्ध समस्त मण्डलों के ऋषियों से हैं ।[2] प्रथम और दशम मण्डल बाद की रचना बताई जाती हैं ।[3] प्रस्तुत संहिता के 1028 सूक्तों में विष्णु के लिए केवल पांच सम्पूर्ण सूक्तों एवम् अंशत कुछ अन्य सूक्तों का प्रयोग हुआ है।

---

1. डॉ मंगलदेव - भा०सं० का० वि० - ‹पृष्ठ संख्या 143›

2. "अथ ऋषयः शतर्चिनो माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रि भरिद्वाजो वसिष्ठः प्रगाथाः पावमान्यः क्षुद्र सूक्ताः महा सूक्त इति" ।
   -‹आश्वलायन गृह्यसूत्र 6-4-2›

3. डॉ० राजकिशोर सिंह - वै० सा० का इति० ‹पृष्ठ संख्या 38-39›

इन ऋचाओं में विष्णु का नाम मुश्किल से 100 बार आया है । यद्यपि सांख्यिक प्रदत्तों के आधार पर विष्णु चतुर्थ श्रेणी के देव हैं परन्तु महत्त्व की दृष्टि से विष्णु का ऋग्वेद में प्रमुख स्थान है ।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में विष्णु के उत्तम कार्यों का वर्णन जितनी मार्मिकता एवम् उदात्तता के साथ किया गया है, उतनी मार्मिकता एवम् ओजस्विता अन्यत्र देखने को नहीं मिलती । डॉ0 खोण्डा के अनुसार "वस्तुत: विष्णु के प्रारम्भिक एवम् मूलस्वरूप का जितना सुन्दर वर्णन भारतीय परम्परा प्रस्तुत करती है उतना किसी भी विदेशी विद्वान की नहीं ।[1]" ऋग्वेद में विष्णु का स्वरूप निम्नांकित आयामों में हम स्पष्टतया प्रदर्शित कर सकते हैं ।

1. <u>विक्रमण कर्ता के रूप में विष्णु</u> :

ऋग्वेद में विष्णु का सर्वाधिक प्रमुखकार्य तीन पगों का निक्षेप ‡त्रि+वि+क्रम‡ है ।[2] पाद प्रक्षेपों से ही इस देव ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नाप लिया है । ऋग्वेद के

---

1. जान खोण्डा - आस्पेक्ट्स ‡पृष्ठ संख्या 172‡
2. इदं विष्णु विचक्रमेत्रेधा निदधेपदम् । समूल्हमस्यपांसुरे । ‡ऋ0 वे0 1-22-17‡

वाजसनेयी संहिता 5-15, सामवेद 2+1020, अथर्ववेद 7-26-5.

प्रथम मण्डल की ऋचाओं में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है । "तीन प्रकार से विचक्रमण करते हुए विष्णु ने सारे जगत् को व्याप्त कर लिया है । क्रान्त द्रष्टा ऋषि देवता के मुख्य कर्मों को प्रख्यापित करने की आकांक्षा से सबसे पहले उसके कर्म का वर्णन करता है ।""अब [मैं उस] विष्णु के वीर कर्मों को प्रख्यापित करूँगा, जिसने पृथिवी सम्बन्धी स्थानों को नाप लिया है, तथा तीन प्रकार से पदन्यास करते हुए विशाल गतिशील जिसने उर्ध्वस्थ सहनिवास स्थान को स्थिर कर दिया है"।[1] इसी सूक्त के द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि विष्णु के पदप्रक्षेपों के अन्दर सम्पूर्ण विश्व निवास करता है । भयंकर विषम स्थानों में विचरण करने वाले और पर्वतवासी मृगसदृश भयानक सर्वत्र विच्च-रिष्णु पर्वत समान उन्नत स्थान पर ये वेदवाणी स्थितवद्ध विष्णु [अपने] वीर कर्मों के कारण स्तुत किया जाता है, जिसके तीन विशाल पदक्रमों में निखिल भुवन निवास करता है"[2]। विष्णु को इन दोनों मन्त्रों में उरगाय, उरूक्रम, कुचर: गिरिष्ठा आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है । यद्यपि भारतीय एवम् पाश्चात्य विद्वानों में

---

1. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं य: पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय: ॥ [ऋग्वेद 1-154-1]

2. प्र तद्विष्णु: स्तवते वीर्येण मृगो न भीम: कुचरो गिरिष्ठा: ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ [वही 1-154-2]

इन शब्दों के अर्थों में मतभिन्नता है फिर भी अन्ततः सबका दृष्टिकोण विष्णु के उत्तम एवम् ओजस्वी कार्यों, विशेषकर विक्रमण के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए, विष्णु के सुन्दर स्वरूप का मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करना है ।

एक अन्य मन्त्र में विष्णु के तीन पदक्रम मधु से परिपूर्ण बताये गये हैं । "जिस विष्णु के मधु भरे तीन पद न क्षीण होते हुए, स्वतन्त्रतापूर्वक मदयुक्त बनाते हैं । अकेले ही जिस [देव] ने पृथिवी, द्युलोक तथा सकल भुवनों को तीन प्रकार से धारण किया है" ।[1] इस ऋचा के अनुसार तो यद्यपि विष्णु के तीनों ही पद मधु से भरे हैं परन्तु इनमें से तीसरा जो सबसे ऊपर है उसमें तो मधु का अनन्त स्रोत ही है । "इस विष्णु के उस प्रिय स्थान को मैं प्राप्त करूँ जहाँ देवकामी जन प्रसन्नता प्राप्त करते हैं । विशाल गतिशील विष्णु के परम पद में मधु का स्रोत है, इस प्रकार वह विष्णु हमारा हितेच्छु है ।[2] प्रस्तुत मन्त्र में ऋषि ने मानव जाति के लिए इस मन्त्र के द्वारा कल्याण करने के लिए विष्णु का स्तवन किया है । विष्णु का तीसरा [अन्तिम] पद परमपद माना जाता है । ऋग्वेद में इसका बड़ा महत्त्व बताया गया है । साधारण मनुष्यों

---

1. यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
   य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ [ऋ0वे0 1-154-4]

2. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
   उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ [ऋ0वे0 1-154-5]

की दृष्टि यहाँ तक नहीं पहुँच पाती, केवल ऋषि ही अपने प्रातिभ चक्षुओं से इस लोक को देख पाते हैं ।

विष्णु का यह तृतीय पद मानवीय दृष्टि से तथा पक्षियों के उड़ान से बाहर है ।[1] विष्णु का तीनों स्थानों में निवास होने के कारण विष्णु का दूसरा नाम त्रिधातु भी है । महाभारत में भी विष्णु को त्रिधामा कहा गया है । विष्णु त्रिधातु अर्थात् तीन प्रकार के हैं । इन सभी मन्त्रों में मुख्य रूपेण एक ही बात दृष्टिगोचर होती है कि विष्णु ने अपने तीनों मधु युक्त पदों से निखिल ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर रखा है और समस्त विश्व उनके भीतर निवास करता है ।

आचार्य यास्क ने ऋ0 वे0 1-22-17 की व्याख्या करते हुए इस सम्बन्ध में अपने पूर्व के दो वैदिक विद्वानों शाकपूणि तथा और्णभाव के मत का उल्लेख किया है ।[2] आचार्य दुर्गाचार्य ने भी अपनी निरूक्त वृत्ति में इसकी विस्तृत व्याख्या की है ।

---

1. तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्त: पतत्रिण: । ऋग्वेद 1-155-5.

2. यदिदं किंच तद् विक्रमते विष्णु: । त्रेधा निधत्ते पदम् । त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि इति शाकपूणि: ---------- समूढस्य पांसुले इव पदं दृश्यते इत्यादि । निरूक्त-12-19.

संक्षिप्ततः इन विद्वानों के अनुसार विष्णु भौतिक सूर्य का आधिदैविक रूप है । और्ण-भाव का मत है कि प्रातः, मध्याह्न तथा सन्ध्या में सूर्य के क्रमशः उदयाचल, मध्याकाश और अस्ताचल पर स्थित ही विष्णु के तीन पद हैं ।

विष्णु का एक पद पूर्व दिशा में और दूसरा सर्वोच्च गगन में और तीसरा पश्चिम के क्षितिज पर पड़ता है । मैक्समूलर,[1] म्यूर[2] एवम् हावर, केग, हिवटन तथा डायसन आदि इसी मत से सहमत हैं । शाकपूणि के मत के वैगेन्र्य तथा ब्लूम फील्ड अनु-यायी हैं । ब्लूम फील्ड के अनुसार विष्णु के पदक्रम सूर्य की प्रातः काल से मध्याह्न तक की गति को व्यक्त करते हैं ।[3] यास्क, शाकपूणि तथा दुर्गाचार्य के इस विवेचन को कुछ विद्वानों ने असन्तोषजनक एवम् तर्कहीन बताया है, लेकिन परवर्ती साहित्य में शाक-पूणि के मत को सभी ने महत्त्वपूर्ण बताया है । विष्णु के तृतीय या परमपद में द्रुत-गामी तथा अनेको सींगों वाली गायें भी रहती हैं । ऋग्वेद के एक मन्त्र में उल्लेख है कि "हे इन्द्र तथा विष्णु हम तुम दोनों के उस निवास योग्य स्थानों में जाने की इच्छा करता हूँ जहाँ विशाल सींगों वाली गायें रहती हैं ।[4] विष्णु को पदप्रक्षेप की

---

1. मैक्समूलर - ऋग्वेद का अनुवाद [से0 बु0 ई0] प्रथम भाग [पृष्ठ संख्या 117]
2. जे0 म्यूर - ओरिजनल संस्कृत टैक्सट्स पंचम भाग [पृष्ठ संख्या 66-67 तथा भूमिका-7]
3. ब्लूम फील्ड - रिलीजन आफ द वेद । [पृ0 सं0 169]
4. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
   अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ [ऋग्वेद-1-154-6]

क्या आवश्यकता थी ? यद्यपि यह प्रश्न महत्वहीन है फिर भी ऋग्वेद में इसके कुछ कारण प्राप्त होते हैं । विष्णु एक कृपालु एवम् विनम्र स्वभाव के देव हैं । मानव का दैहिक, दैविक और भौतिक किसी प्रकार का ताप विष्णु को सहन नहीं है । सहज स्वभाव वाले विष्णु ने मनुष्यों की रक्षा के लिए यह आदर्श कार्य किया, विष्णु ने त्रस्त मानवता के लिए पार्थिव स्थानों को तीन बार नापा है । मनुष्य को आवास प्रदान करने के लिए विष्णु ने पृथिवी पर पाद-प्रक्षेप किया[1] । विष्णु ने लोक रक्षा (कल्याण) के लिए पाद प्रक्षेप किया[2]। इस प्रकार और कई मन्त्रों में विष्णु के विक्रमण के कारण का उल्लेख मिलता है। विष्णु सर्वत्र रक्षक, उपकारी, उदार, दयालु और विनम्र कहे गये हैं । प्रेरक विष्णु ही पृथिवी, द्युलोक तथा निखिल प्राणियों को धारण करने में सक्षम हैं । दीर्घतमा ऋषि ने त्रिष्टुप् छन्द के माध्यम से भगवान् विष्णु के त्रिवि-क्रम का स्तवन किया है । विष्णु के तीनों पगों में मधु विद्यमान है, जो भी निष्ठा और श्रद्धा से विष्णु के गुणों की स्तुति करेगा उसे वहाँ पहुँचने पर अलौ-किक आनन्द प्राप्त होगा । इन सभी उद्धरणों से स्पष्ट है कि विष्णु कल्याण-

---

1. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः ।
   अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि । ऋग्वेद 1/154/6

2. विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
   ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ।। ऋग्वेद 7/100/4

कारी स्वभाव वाले देव हैं, जो इन्द्र तथा मानव जाति का सतत कल्याण करते हैं।

2. सूर्य के रूप में विष्णु की कल्पना

ऋग्वेद की ऋचाओं में सूर्य और विष्णु को एक दूसरे से सम्बन्धित बताया गया है। कई मंत्रों में एक ही विशेषण सूर्य और विष्णु दोनों देवों के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा, उरुक्रम, विक्रम आदि। वृहद्देवता तथा निरुक्त के अनुशीलन से एवम् आदित्यगणों में गणना किये जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु का सूर्य से सम्बन्ध अवश्य था। समस्त भूमण्डल सूर्य के किरणों से प्रकाशित होता है। सूक्ष्म विवरों में भी सूर्य की सर्वत्र गामिनी किरणें प्रविष्ट रहती हैं। वह महतो महीयान् तथा अणोरणीयान् है[1]। अत: सूर्य के इस व्यापक रूप में व्यापक विष्णु की कल्पना हमारे तप:सूत ऋषियों का सहज चिन्तन था। यही कारण था कि इनके गुणों का हमारे वैदिक महर्षियों ने अपने प्रातिभ चक्षुओं से साक्षात्कार किया। जिस प्रकार सूर्य देव को पार्थिव

---

1. य: पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभि: उरुक्रमिष्टोरुगायाय जीवसे।
ऋग्वेद 1 55/4

2. बर्गेन - ला०रि०वे० 3, पृष्ठ संख्या 38-64

3. डॉ० जी०सी० त्रिपाठी, वैदिक देवता उ०वि०, पृष्ठ संख्या 306

लोकों को नापने वाला कहा गया है, उसी प्रकार विष्णु को भी अनेक स्थानों पर पृथिवी मण्डल को नापते हुए वर्णित किया गया है[2]। ऋग्वेद में विष्णु के लिए उरुगाय, उरुक्रम विशेषण के रूप में, वि-क्रम क्रिया पद के रूप में आया है। यही विक्रम शब्द बाद में चलकर सूर्य का भी विशेषण हो गया है ऋग्वेद में उल्लेख है कि "यह (सूर्य) आकाश में स्थित विभिन्न रंगों वाला एक ऐसा रत्न है जो अनेक पाद प्रक्षेप करता है[1]। युरोप के अधिकांश विद्वान् एवम् और्णभवविष्णु के तीनों पगों का अर्थ सूर्य का उदय, मध्यान्ह और अस्त मानते हैं। जबकि इसके विपरीत वर्गैन्य और शाकपूणि तीनों पगों को ब्रह्माण्ड के तीन विभाजनों से होकर जाने वाले सौर देव के पथ के रूप में स्वीकार करते हैं। मैकडानल का मत है कि "विष्णु की कल्पना आकाश में तीव्र गति से विचरण करने वाले सूर्य से करनी चाहिए[2]। कून महोदय ने विष्णु के सुदर्शन चक्र को सूर्य का प्रतीक माना है[3]। कीथ ने ऋग्वेद के एक मन्त्र के अनुसार सूर्य

---

1. यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
   यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसिदेवः सविता महित्वना ।।
   ऋग्वेद, 5/81/3
2. यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
   तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा 3 तना च ।। ऋग्वेद 6/49/13
3. उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
   मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ।। वही 5/47/3
4. मैक्डानल, वै0मै0, पृष्ठ संख्या 39
5. कून हे0डे0 फा0 उ0डे0यो0 , पृष्ठ संख्या 222

को समय विभाजक कहा है[1]। अर्थात् सूर्य के सम्बत्सर से विष्णु के सम्बन्ध को निरुपित किया गया है । इन दोनों विद्वानों के अनुसार सुदर्शन चक्र तथा सूर्य का सम्बन्ध विष्णु के रथ के एक चक्र से है । ऋषियों तथा विद्वानों ने सुदर्शन चक्र के रूप में सूर्य की जो कल्पना की है वह भले ही भ्रामक हो, किन्तु उसे असत्य नहीं कहा जा सकता है । सम्भव है कि जब विष्णु का व्यक्तित्व दैवीकरण की अन्तिम सीमा है पर पहुँचा हो तो सुदर्शन चक्र केवल शस्त्र बन कर रह गया हो और जो स्वाभाविक भी था । विष्णु के वाहन पक्षीराज गरुड़ को अग्नि के समानं भास्वर कहा गया है । गरुड़ का अन्य नाम गरुत्मत तथा सुपर्ण भी है । ये दोनों शब्द ऋग्वेद में सूर्यवाचक है । हापकिन्स महोदयके अनुसार पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर जाता हुआ सूर्य का बिम्ब वैदिक मुनियों की कल्पना में व्योमहारी गरुड़ है[2]। ऋग्वेद में भी सूर्य को शीघ्रगामी श्येन कहा गया है[3]। कून तथा कुछ अन्य पंडितों ने विष्णु के वक्षस्थल पर देदी-प्यमान मणि को भी सूर्य के रूप में कल्पना की है । इस प्रकार हम इस निष्कर्ष

---

1. कीथ, वैदिक इन्डेक्स, पृष्ठ संख्या 466
2. हापकिन्स, रि0आफवि0इ0, पृष्ठ संख्या 45.
3. आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।

   रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद गोषु गच्छन् ।।

   ऋग्वेद. 5/45/9

पर पहुँचते हैं कि यद्यपि विष्णु अपने स्वरूप में प्राकृतिक घटना से संलग्न नहीं है फिर भी उपर्युक्त सभी प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि मूलत: सूर्य के रूप में ही विष्णु की धारणा विकसित हुई थी, जो कि साधारण चरित्र की दृष्टि से भले ही नहीं, अपितु तीव्रगति से गतिमान एक ऐसे प्रज्वलित पिण्ड के सदृश ही थी जो अपने पाद प्रक्षेपों से समस्त जगत को नापता हुआ प्रतीत होता है। अत: सूर्य के रूप में विष्णु की कल्पना करना स्वाभाविक एवम् नितान्त आवश्यक था।

3. इन्द्र के मित्र के रूप में विष्णु

ऋग्वेद में विष्णु को इन्द्रका मित्र कहा गया है। वृत्र के विरुद्ध युद्ध में विष्णु ने इन्द्र की पूर्ण सहायता की है। वृत्र के वध के समय विष्णु को प्राय: इन्द्र के साथ दिखाया गया है। इसका स्पष्ट प्रमाण ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त से मिलता है[1]। यह सूक्त इन दोनों पराक्रमी देवों को संयुक्त रूप से समर्पित है। इसकी प्रथम ऋचा में धन की प्राप्ति के लिये दोनों देवों का एक साथ स्तवन किया गया है[2]। एक अन्य ऋचा के अनुसार मनुष्य के जीवन

---

1. ऋग्वेद, 6/69 सम्पूर्ण सूक्त
2. सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य।
   जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता।।
   ऋग्वेद 6/69/1

के लिये स्थान सुरक्षित करने के लिए विष्णु और इन्द्र (दोनों) सम्पूर्ण अन्त-रिक्ष एवम् लोकों को विस्तृत करें[1]। यद्यपि ऋग्वेद में इन्द्र की सर्वशक्तिमान देवता के रूप में स्तवन किया गया है और विष्णु से शक्तिशाली देवता भी प्रतीत होते हैं, किन्तु विष्णु की सहायता के बिना इन्द्र का विजय प्राप्त करना असम्भव सा प्रतीत होता है। यही कारण है कि इन्द्र विष्णु के पास जाकर कहते हैं हे मित्र! अपने पदक्रमों का विस्तार करो, जिससे हम दोनों मिलकर वृत्र का वध कर सकें, तथा आकाशीय (देव) नदियों को वृत्र के अव-रोध से मुक्त करायें[2]। एक अन्य स्थान पर विष्णु से इन्द्र निवेदन करते हैं कि हे विष्णु विस्तृत पाद प्रक्षेप (वि-क्रमण) करो। जिससे मैं वृत्र को मारने में समर्थ होऊँ[3]। एक मन्त्र में इन्द्र और विष्णु को अदम्भ्य कहा गया है[4]।

---

1. इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातुं द्रविणो दधाना।
   सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः।। ऋग्वेद 6/69/3
2. इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
   अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथितं जीवसे नो रजांसि।। वही, 6/69/5
3. सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे।
   हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः।। वही, 8/100/12
4. उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः।
   अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व।।वही, 4/18/11
5. प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत।
   या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना।। वही, 1/155/1.

दोनों मित्र पर्वतों के शिखर पर एक घोड़े के सहारे खड़े हैं ।

एक स्थान पर विष्णु को चोरी कर्म में संलग्न बताया गया है । बलवान् धनुर्धारी विष्णु ने पर्वतों को विदीर्ण करते हुये वाराह को वेध डाला और पका हुआ अन्न चुरा ले गये ।[1] एक और ऋचा में कवि इन्द्र से कहता है कि हे इन्द्र तुम्हारे द्वारा प्रेरित विष्णु एक सौ महिष, दूध में पका हुआ चावल (पायस या खीर) तथा एक भयंकर शूकर (एमुष) को उठा ले गये[2]। इन मन्त्रों से प्रतीत होता है कि विष्णु का वाराह वध ही इन्द्र द्वारा किया वृत्र वध है जिसके विषय में पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि विष्णु द्वारा वाराह वध इन्द्र के वृत्र वध का आलंकारिक वर्णन मात्र है, वाराह वृत्र का का प्रतीकात्मक नाम है । विष्णु और इन्द्र ने मिलकर दास पर विजय प्राप्त

---

1. अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
   मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वाराहं तिरो अद्रिमस्ता ।।
   ऋग्वेद 1/61/7

2. लुई रेनु, वृत्र ए वृथ्रग्न पेरिस, 1934, पृष्ठ संख्या 151,
   खोण्डा, आस्पेक्ट्स, पृष्ठ संख्या 134
   कीथ, रि एण्ड फि०, पृष्ठ संख्या 111

   इन्द्राविष्णू दृंहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
   शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ।। ऋग्वेद 7/99/5

किया, शम्बर के 99 दुर्गों को ध्वस्त किया तथा शक्तिशाली वर्चिन के दल को परास्त किया [1]।

श्री: (लक्ष्मी) के साथ विष्णु

ऋग्वेद में श्री: का उल्लेख किसी देवी या देवता के रूप में नहीं प्राप्त होता है । प्राचीन महर्षियों ने ऋचाओं के आधार पर इस शब्द को भाग्य, धन, शोभा, श्रेष्ठता, ऐश्वर्य, सम्पत्ति तथा समृद्धि के रूप में निरुपित किया है । सायण ने अपने भाष्य में "श्री:" को विभूति का वाचक बताया है । ऋग्वेद में श्री: शब्द का प्रयोग मुख्यत: इन मन्त्रों में हुआ है ।

युवोर्विश्वा आधि श्रिय: पृक्षश्च विश्ववेदसा ।

प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ।।[2]

---

1. इन्द्राविष्णू दृंहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिन: सहस्त्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ।। ऋग्वेद 7/99/5

2. वही, 1/139/3

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे ।
ता नश्चोदयत श्रिये ।।[1]

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ।।[2]

अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ।।[3]

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ।।[4]

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ।।[5]

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ।।[6]

---

1. ऋग्वेद, 1/188/8,
2. वही, 6/48/ 19
3. वही, 7/67/2
4. वही, 8/20/12
5. वही, 9/94/4
6. वही, 10/45/5

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसावाचमक्रत ।

अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि[1] ।। ‡8 ‡

इन मन्त्रों में श्री: शब्द मरुत् तथा उषा के शारीरिक सौन्दर्य एवम् स्निग्ध व्यक्तित्व का मार्मिक निरूपण ही नहीं वरन् उससे कहीं अधिक उनके मनोभावों का मनोहारी एवम् उदात्त चित्रण है ।

ऋग्वैदिक 'श्री' का स्वरूप भावात्मक अधिक होने के कारण भौतिक आर्धार से दूर है ।[2] सम्भवत: उषा सुन्दरी के आभा एवम् लालित्यपूर्ण स्वभाव ने 'श्री' के उस रूप को जन्म दिया है जो शोभा एवम सुन्दरता का परिचायक है । प्रकृति के सुरम्याञ्चल में उष:कालिक दृश्य अतीव मनोहारी है । अत: शारीरिक सौन्दर्य रूपी सम्पत्ति की सूचना देने वाली देवी 'श्री' का उससे सम्बन्ध भी स्वाभाविक है । इस विषय में एक वैदिक विद्वान ने 'श्री' का वर्णन करते हुए बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है - "अपनी प्रखर किरणों से

---

1. ऋग्वेद, 10/71/2

2. डॉ0 उपेन्द्र नाथ धल, दिल्ली, सन् 1978, पृष्ठ संख्या 134.

लोकत्रय को व्याप्त करने और वेष्टित करने वाले सूर्य की ही वेदों में विष्णु संज्ञा है और उस विष्णु का ब्रह्म से उषस् ही उनकी श्री है , जो कालान्तर में उनकी प्रियतमा पत्नी (लक्ष्मी, कमला) बन जाती हैं[1]। यद्यपि ऋग्वैदिक साहित्य में विष्णु के साथ श्री का वर्णन अप्राप्त है किन्तु श्री के गुण एवम् व्यक्तित्व के आधार पर यह कहना समीचीन ही होगा कि परवर्ती साहित्य में मनीषियों की लेखनी में यही 'श्री' समायी हुई हैं ।[2] सूर्य के भासमान किरणों (उषा) की 'श्री' रूप में कल्पना की गयी है । विष्णु की भी ऋषियों ने सूर्य के रूप में कल्पना की है । अतः सूर्य की 'श्री' विष्णु की 'श्री' है । वस्तुतः विष्णु की इस श्री को विद्वानों ने समृद्धि, भाग्य एवम् शोभा का प्रतीक माना है । यह किसी भी रूप में विष्णु की पत्नी के रूप में ऋग्वेद में प्रदर्शित नहीं हुई है । किन्तु विष्णु के तेज या आभा के रूप में ही देवी 'श्री' की कल्पना करना उपयुक्त है ।

---

1. डॉ० एस०के० दीक्षित, ज्यो०जा०ल०न०० (हिन्दी डाइजेस्ट पेरिस) (नवम्बर 1959), पृष्ठ संख्या 37

2. विष्णुपुराण, 1/8/23.

यजुर्वेद में विष्णु का स्वरूप

यजुर्वेद भारतीय संस्कृति का प्राण है । यह महान् यज्ञों का सर्वांग सुन्दर अमर काव्य ही नहीं वरन् इससे भी अधिक प्रत्यक्ष शब्दब्रह्म है । यह विश्व रचना के कण-कण में विद्यमान विराट सौन्दर्य द्रष्टा कवियों की वह अलौकिक अनुभूति है जिसमें उन्होने प्रकृति पुरुष के दिव्य क्रीडाओं का अपने अलौकिक नेत्रों से साक्षात्कार किया है । हमारा धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, व्यवहार एवम् रहन-सहन सभी कुछ वेदानुसक्ति है । इस वेद का उपयोग यज्ञ में अध्वर्युकर्म के लिए किया जाता है । डा० राधाकृष्णन् के अनुसार "यजुर्वेद संहिता अध्वर्यु पुरोहितों की केवल प्रार्थना पुस्तक ही नहीं अपितु ब्राह्मण ग्रन्थों के निगूढ दार्शनिक तत्त्वों तथा उपनिषदों के सम्यक् ज्ञान के लिए एवम् भारतीय दर्शन शास्त्र के अध्ययन के लिए भी महत्त्वपूर्ण है"[1]। हमारे वर्तमान

---

1. डा० सर्वपल्ली, राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन, पृष्ठ संख्या 58.

साहित्य के बीज यजुर्वेद में ही अङ्कुरित हो चुके थे जो परवर्ती काल में सभी विद्वानों के लिए अध्ययन की आधार शिला बन गयी । एक अन्य विद्वान के अनुसार समस्त वैदिक साहित्य में यजुर्वेद का विशिष्ट स्थान है, मनुष्य जीवन के विकास की ज्ञान, कर्म और उपासना तीन सीढ़ियां हैं, इसमें कर्म की सीढ़ी या कर्मकाण्ड का प्रतिपादन विशेषत: यजुर्वेद करता है[1] । यजुर्वेद की उपलब्ध संहिताओं का विवेचन पिछले अध्याय में किया जा चुका है । वस्तुत: यह वेद ऋग्वेद के परवर्तीकाल की स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है । इसके अधिकांश मन्त्रों का विनियोग संस्कारों का निरूपण करने के लिए होता है । इसी कारण ये मन्त्र देवों को प्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित नहीं करते । यजुर्वेद के देव गण केवल छायात्मक शक्ति ही हैं , जिनका प्राय: सम्बन्ध याज्ञिक क्रियाओं से है । प्रजापति सभी देवों में मुख्य देव हैं । इनका यजुर्वेद में विष्णु से कहीं अधिक महत्व है । इस वेद में विष्णु का सम्बन्ध प्राय: यज्ञों से रहा है । यज्ञ पूर्ण

---

1. डॉ० मङ्गलदेव, भा०सं० का विकास ।

होने की कामना से महर्षियों ने विष्णु का स्तवन किया है । इनका यज्ञ से तादात्म्य तथा व्यापनशीलता इनके स्वरूप को पूर्णरूपेण स्पष्ट किया है । हमने यजुर्वेद में विष्णु के स्वरूप को निम्नांकित आधारों पर निरूपित करने का यथासम्भव प्रयास किया है ।

1. यज्ञों में विष्णु का स्वरूप

वैदिक यज्ञ अपनी गहनता में ही नहीं, जटिलता में भी अनुपम है । सामान्य क्रिया को भी मन्त्रपूर्वक करना यज्ञ की सर्वप्रमुख विशिष्टता है । इस सर्वोत्तम कामधुक् कर्म को विष्णु ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही देवों और मनुष्यों के पारस्परिक निःश्रेयस् के लिए उत्पन्न किया था । अतः जन्यजनक सम्बन्ध के अभेदत्व के आधार पर यज्ञ को विष्णु कहा गया है । विष्णु ही यज्ञ हैं, वही यज्ञाधिदेव हैं । विष्णु त्रिपाद्शेष हैं, सम्पूर्ण विश्व उनका एकपाद् है । सच तो यह है कि सृष्टि एक यज्ञ है । इस यज्ञीय उपासना का मूल प्रेरणास्त्रोत ऋग्वेद का पुरुष सूक्त है[1] । विष्णु का यज्ञ से तादात्म्य का प्रारम्भ यजुर्वेद में

---

1. ऋग्वेद पुरुषसूक्त, 10/90

ही हो चुका था । यजुर्वेद के प्रारम्भ में ही विष्णु द्वारा हव्य तथा यज्ञ की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है—हे, चराचर में व्यापक देव विष्णु! हव्य की रक्षा करो[1]। एक अन्य मन्त्र में 'यज्ञाधिष्ठातृ देव विष्णु अपने इन्द्रियों से चैतन्य बनाने वाले बल से तुम्हारी रक्षा करें, तुम विष्णु रूप यज्ञ की रक्षा करो[2]। प्रस्तुत मन्त्र में विष्णु और यजमान की एकरूपता प्रतिपादित की गयी है ।

यज्ञ जगत् की सर्वोच्च शक्ति है, मनुष्यों के ही नहीं, देवों तक के अस्तित्व का आधार है । वह सबका आच्छादक है । यज्ञ के द्वारा ही विष्णु जड़ और चेतन, स्थावर तथा जंगम को अपने अन्दर व्याप्त कर लेते हैं । जगत् के व्यापन तथा आच्छादन की इस प्रमुख विशेषता ने ही दोनों के तादात्म्य में सर्वाधिक महत्व पूर्ण योग दिया है ।

---

1. सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्व धायाः ।
   इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष ।।

   - शुक्लयजुर्वेद 1/4

2. पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णु त्वम्
   पाह्यभि सवनानि पाहि । वही, 7/20.

भगवान् विष्णु ने इस समस्त ब्रह्माण्ड को विविध रूपों में व्याप्त होकर आक्रान्त किया । वामनरूप धारण करके उन्होने पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों स्थानों में अपने चरण को रखा । यह समस्त ब्रह्माण्ड उनकी पद धूलि से तिरोहित हो गया । हमारी इस हवि से वे तृप्त हो[1]। ये दोनों द्यावा-पृथिवी अन्न जल और गौ आदि पशुओं से परिपूर्ण है । सुन्दर यवस आदि अन्न एवं चारे से समृद्ध हैं । मननशील यजमान को उत्तम पदार्थ देने वाली हैं । हे कण-कण में व्याप्त नारायण । तुम इन दोनों को धारण करते हो और पृथिवी को अपने तेज रश्मियों से धारण करते हो । यह आहुति विष्णु को तृप्त करे[2] ।

---

1. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम । समूढमस्यपांसुरे स्वाहा ।

- शुक्ल यजुर्वेद, 5/15

2. इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनवे दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवे ते दाधर्त्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ।

- वही, 5/16

हे नारायण! दयुलोक या स्वर्ग से या पृथिवी से, हे सर्वव्यापक, अतिविस्तीर्ण अन्तरिक्ष में विद्यमान अपने दोनों हाथों को परिपूर्ण कर लो और भक्तों को प्रदान करो। दाईं ओर से व बाईं ओर से भी। हे यज्ञ-स्तम्भ! उस विष्णु के प्रीत्यर्थ तुझे स्थापित करता हूँ।[1]

हे वन्दनवार के आधार दण्ड! तू यज्ञ मण्डप रूप विष्णु का मस्तक स्थानीय है। विष्णु के ओष्ठ सन्धि रूप हो। हे सूचि! तुम विष्णु रूप यज्ञ मण्डप को सीने वाली सुई हो। हे ग्रन्थि बन्धन, तुम इस यज्ञ मण्डप को स्थिरता देने वाले हो। हे मण्डपाधार वंश, तुम विष्णु रूप मण्डप के प्रधान आधार हो। तुझे विष्णु के प्रीत्यर्थ स्पर्श करता हूँ।[2]

वह विष्णु अपने अद्भुद पराक्रम से कारण स्तुति को प्राप्त होता है, जो सिंह के समान भयंकर है, पृथिवी पर सर्वत्र विचरने वाला तथा महेन्द्र

---

1. दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्त रिक्षात्
   उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत्त सव्यादि्वष्णवे त्वा।
   – शुक्ल यजुर्वेद, 5/19
2. विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।
   वैष्णवमसि विष्णवे त्वा। वही, 5/21

पर्वत या भक्तों की वाणी में निवास करने वाला है । वामनावतार घाटी जिसके महान् तीन पाद प्रक्षेपान्तर्वर्ती पृथिवी अन्तरिक्ष द्यु इन तीन स्थानों में सम्पूर्ण भूत जात और लोक लोकान्तर निवास करते हैं[1] । विष्णु और यज्ञ के इस साम्य के कारण मैत्रायणी संहिता में एक मनोरंजक कथा प्राप्त होती है । इस कथा में विष्णु के स्थान पर मख या यज्ञ है । वह स्वतः एक देवता है । सभी देवता मिलकर यज्ञ करते हैं । आपस में निश्चय करते हैं कि जो भी समृद्धि किसी एक को प्राप्त होगी, वह समान रूप से सबकी होगी । वह समृद्धि मख को प्राप्त होती है, किन्तु वह किसी को देना नहीं चाहता और जब देखता है कि देवता उससे बलात् लेने को तैयार हैं, तो वह तीन बाण और धनुष लेकर चले जाते हैं । देवों के कहने पर दीमकें अपना काम करती हैं और मख का सिर कटकर सम्राज (प्रवर्ग्य) बन जाता है । अग्नि, इन्द्र और वायु उसको क्रमशः पूर्व, मध्य और अन्त में ग्रहण कर लेते हैं । मैत्रायणी संहिता की यह कथा

---

1. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
   यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।।

   – शुक्लयजुर्वेद, 5/20

विशुद्ध यज्ञीय उद्‌भावना है । परवर्ती साहित्य में यह कथा अति विस्तार में आयी है[1] ।

पुराणों में विष्णु को 'यज्ञ का स्वामी', 'यज्ञ का अधिष्ठाता' तथा 'यज्ञफल प्रदाता' कहा गया है । ब्रह्म पुराण में विष्णु के लिए 'यज्ञेश', 'यज्ञवाहन' तथा यज्ञपुरुष विशेषण प्रयुक्त हुए हैं[2] ।

विष्णु पुराण भारत माता की प्रशंसा करते हुए कहता है कि भारत में विविध यज्ञों से यज्ञपुरुष, यज्ञमय, भगवान् विष्णु की उपासना की जाती है[3] ।

---

1. देवा ह वै सत्रमासत कुरुक्षेत्रे । अग्निर्मखो वायुरिन्द्रः ते अब्रुवन् । यतमो नः प्रथम ऋध्नवत् तं न सहेति । तेषां वै मख आध्नोर्ति । तं न्यकामयत । तं न समसृजत तदस्य प्रासहादित्सन्त । स इव एव तिस्रो अजनयत् । स प्रति धायपक्रामत । तं नाभ्यधृष्णुवत् । तं धन्वर्तिप्रतिष्कभ्यातिष्ठत । स इन्द्रो बम्रीरब्रवीत एतां ज्यामत्यत्येति ता वै ज्यामप्यादन । तस्य धन्वार्ति-रुद्यय शिरो छिनत् । स सम्राडभवत् । अथैतरं त्रेधा व्यगृह्णत । अग्निः पूर्वार्धम, इन्द्रं मध्यं, वायुर्जघनार्धम् । मैत्रायणी संहिता, 4/5/9
2. क, नासौ विप्रो, बले सत्यं यज्ञेशो यज्ञवाहनः । ब्रह्मपुराण, 73/32

   ख. यज्ञेशो यज्ञपुरुषश्चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे । वही, 73/42
3. पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।

   यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुः अन्य द्वीपेषे चान्यथा ।। विष्णुपुराण, 2/3/21

श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रजापति रुचि की पत्नी आकूति के गर्भ से विष्णु सुयज्ञ नाम से जन्म लेते हैं । उनकी पत्नी का नाम दक्षिणा है । दोनों के संयोग से सुन्यम नामक देवगणों की उत्पत्ति होती है[1] ।

यज्ञ और दक्षिणा का परस्पर सम्बन्ध तैत्तिरीय संहिता में भीप्राप्त होता है । इसमें दक्षिणा के गर्भ से इन्द्र का जन्म होता है[2] ।

2. विक्रमण कर्ता के रूप में विष्णु

विष्णु ने त्रस्त मानवता के उद्धार के लिए तीन पाद-प्रक्षेपों में तीनों पार्थिव स्थानों को नाप लिया । वाजसनेयी संहिता के अनुसार - सम्पूर्ण विश्व विष्णु के इन्हीं तीनों चरणों के अन्दर व्याप्त है[3] । एक अन्य मन्त्र में उल्लिखित है कि सर्वव्यापक भगवान् विष्णु ने अपने गतिशील सामर्थ्य की

---

1. जातो रुचेरजनयत् सुयमान् सुयज्ञः ।
   आकूतिसूनुरमनामथ दक्षिणायाम् ।। भागवत् 2/7/2

2, तैत्तिरीय संहिता 6/1/3

3. येषु विष्णुस्त्रिषु पदेषु इष्टः तेषु विश्वं भुवनमाविवेश ।

   वाजसनेयी संहिता 23/49

सहायता से द्युलोक को आक्रान्त किया, जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उसे वहाँ से जल अन्नादि भाग से पृथक् करते हैं। विष्णु ने अन्तरिक्ष में विक्रमण किया। विष्णु ने गान करने वाले गायत्री छन्द की सहायता से पृथिवी लोक को आक्रान्त किया[1] । इस प्रकार विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि से तीन पग भूमि की याचना की थी और उसे नापते समय भूरादि तीनों लोकों को नाप लिया था ।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि विष्णु ने अपना तृतीयांश पृथिवी में, तृतीयांश अन्तरिक्ष में और इतना ही आकाश में स्थापित किया । एक अन्य मन्त्र में यज्ञ के समय यजमान के तीन पग चलने का विधान है । ऐसा

---

1. दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेनच्छन्दसा ततो निर्भक्तो यो स्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे -------- गायत्रेणछन्दसा ततो निर्भक्तो योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं --------- या अगन्मस्वः सं ज्योतिषा भूत ।

वाजसनेयी संहिता 2/25

करने से, जिस प्रकार विष्णु ने तीनों लोकों को नाप लिया उसी प्रकार यज्ञ-कर्त्ता भी शक्तिशाली होकर तीनों लोकों को जीत लेता है ।[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दयालु विष्णु के तीनों पादप्रक्षेपों का यज्ञ में प्रतीकात्मक रूप में अनुकरण करने से मनुष्य में उनकी अलौकिक शक्ति आ सकती है और वह भी सर्वशक्तिमान् हो सकता है ।[2]

विष्णु का यज्ञ वराह रूप

भगवान् विष्णु ने पृथिवी की रक्षा के लिए वराह रूप धारण किया । तैत्तिरीय संहिता की एककण्डिका के अनुसार यज्ञ भगवान् विष्णु का रूप धारण करके पृथिवी में छिप जाता है । सभी देवता एक साथ उस देव को खोजते हैं । इन्द्र उसके ऊपर से होकर जाते हैं । विष्णु ने पूछा कि तुम कौन हो ? इन्द्र ने कहा मैं दुर्गों को नष्ट करने वाला तथा असुरों का वध करने वाला हूँ ।

---

1. स विष्णुस्त्रेधा आत्मानं विन्यधत्त पृथिव्यां तृतीयमन्तरिक्षे तृतीयं दिवि तृतीयम् । तैत्तिरीय संहिता - 2/4/12

2. यद्विष्णुक्रमान् क्रमते विष्णुरेव भूत्वायजमान ..... इमाँल्लोकान् अनपजय्यम् अभिजयति ।

तैत्तिरीय संहिता 5/2/1

विष्णु ने कहा तुम पहाड़ियों में घुसे हुए असुरों को मार डालो, जो देवों का धन चुरा ले गये हैं। इन्द्र दर्भ का एक गुच्छा लेकर पर्वतों को भेद डालते हैं और असुरों को मार डालते हैं। तब विष्णुरूपी यज्ञ उस [वराह] को एक यज्ञ के रूप में लाकर असुरों को भेंट करता है।[1]

मैत्रायणी संहिता में भी यह कथा लगभग इसी प्रकार सन्दर्भित है।[2]

---

1. यज्ञो देवेभ्यो निलायत विष्णुरूपं कृत्वा स पृथिवीं प्राविशत् तं देवा हस्तान्त्संरभैयच्छत तमिन्द्र उपर्युपर्युत्यक्रामत् सः अब्रवीत् को मा अयम् उपर्युपरि अत्यक्रमीत इति अहं दुर्गे वै हन्ते यथ कस्त्वमित्यहं दुर्गादाहर्तेति सः अब्रवीत दुर्गे वै हन्ता अवोचथा वराहः अयं वायमोषः सप्तानां गिरीणां परस्तादिवत्तं वेद्यम असुराणां विभर्ति त जहि यदि दर्गे हन्ता असि इति स दर्भपु जीलम् उद्वह्य सप्तगिरीन् भित्त्वा तमहनत् सः अब्रवीत दुर्गाद वा आहर्ता अवोचथा एतमाहरेति तमेभ्यो यज्ञ एव यज्ञमहारद्यत तद्वित्तं वेद्यमसुराणां अविन्दन्त। तैत्तिरीय संहिता 6/3/4/2, 3

2. अभ्यर्धो वै देवभ्यो यज्ञ आसीत् तेनाविदुरिह वा सा इह वेत्यस्ति यज्ञ इति त्वविदुः। तेन वै संसृष्टि मैछन् तं प्रैषमैछन् तम् न अविन्दन्। तं वयांसि उपर्युपरि नात्ययतन्। तमिन्द्रः उपर्युपरिअत्यक्रमत् ..... अयं वराह आमुष्--

इस उद्धरण में विष्णु का प्रारम्भ में उल्लेख अप्राप्य है । इसमें विष्णु और यज्ञ से तादात्म्य कर दिया गया है । यही कथा थोड़े ही अन्तर के साथ काठक संहिता में भी प्राप्त होती है ।[1]

तीनों संहिताओं का सार यह है कि विष्णु श्रेष्ठ देव हैं । असुरों को इन्द्र के साथ पराजित कर के देवताओं को यज्ञ भाग भेंट करते हैं । यज्ञ ही विष्णु है । विष्णु वराहरूप में पृथिवी का उद्धार करते हैं । मैत्रायणी संहिता में वराह का नाम 'आमुख' बताया गया है ।[2] तैत्तिरीय संहिता में इसे 'वाममोष:' कहा गया है ।[3]

--- एक विंशत्या: पुरां पारे अश्ममयीनां तस्मिन् असुराणां वसु वामयन्त: तम जहीति तं वै विष्णुवराहरद । यज्ञों वै विष्णु: यज्ञो वैं तदयज्ञं असुरेभ्य: अध्याहरद यज्ञेन वै तदयज्ञं देवा असुराणामविन्दन्त ...... ।

मैत्रायणी संहिता 3/8/3

1. अति विद्धा विथरेणा चिदस्त्रा त्रि: सप्त सानु संहिता गिरीणाम् न तद्देवा न मर्त्यस्तु तुर्यादयानि । काठक संहिता 25/2
2. सातवलेकर, मैत्रायणी संहिता, औंध संस्करण
3. नीतिमञ्जरी, पृष्ठसंख्या 277

वराह से सम्बन्धित एक और कथा तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होती है । सृष्टि के पहले सर्वत्र जल था । उसी जल के ऊपर वायु का रूप धारण करके प्रजापति विचरण कर रहे थे । प्रजापति ने जल के अन्दर डूबी हुयी पृथिवी को देखा और उसे जल से निकालकर बाहर किया । पृथिवी को निकालते समय प्रजापति, जो वायु रूप में थे, ने वराह का रूप धारण किया था । फिर विश्वकर्मा के रूप में प्रजापति ने उसका जल पोंछा और उसे चपटी बनाया । प्रथित होने (फैलायी जाने) के कारण इसे पृथिवी कहते हैं । यह कथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अति विस्तार के साथ आयी है ।[1]

---

1. आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वा अचरत् । तां वराहो भूत्वा अहरत् । स इमामपश्यत् । तां वराहोभूत्वा अहरत् । तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्त सा अप्रथत् । सा पृथिव्यभवत् । तत् पृथिव्यै पृथिवित्वम् ।

तैत्तिरीय संहिता 7/1/5/1

विश्वरचयिता के रूप में विष्णु

चराचर जगत में विष्णु जगदीश्वर हैं । उन्होने इस प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष जगत को विविध प्रकार से रचा है, रचता है तथा रचेगा । परमेश्वर ने प्रथम प्रकाशवान् सूर्यादि, द्वितीय अप्रकाशवती पृथिवी और तीसरे परमाणु आदि अदृश्य जगत को कारणभूत अवयवों से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापित किया है ।

आचार्य दयानन्द सरस्वती के अनुसार उस विष्णु ने औषधि आदि को पृथिवी पर, अग्न्यादि को सूर्य में और परमाणु आदि को आकाश में स्थापित किया है । इस देव ने तीन प्रकार के जगत की रचना की है ।[1] भार सहित जगत को पृथिवी में, परमाणु आदि सूक्ष्म द्रव्यों को अन्तरिक्ष में, प्रकाशवान् सूर्यादि को आकाश में स्थापित किया है ।

महर्षि अरविन्द ने विष्णु को समस्त विश्व का संरक्षक कहा है ।[2] विष्णु के प्रकाश से ही जरायुज, अण्डज, एवम उद्भिज सभी प्रकार की सृष्टि अनुप्राणित होती है ।

---

1. दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेद भाष्य, पृष्ठ संख्या 410

2. महर्षि अरविन्द, आन दि वेद, पृ0 संख्या 147

विष्णु के वाहन गरुड़ की विशेषता

यजुर्वेद में विष्णु के वाहन गरुड़ की पक्षी के रूप में कल्पना की गयी है। यह पक्षी मनुष्यों के यज्ञ - हव्य को आकाश में देवों तक ले जाता है । यज्ञीय हवि को वह उसके विभिन्न अधिकारियों के पास वहन करता है । वाजसनेयी संहिता में कहा गया है कि हे अग्ने तुम शोभन पंखों वाले गरुड़ पक्षी के समान ज्वाला रूप पंखों वाले हो, गरुण वाले हो । अतः पृथिवी के पीठ पर स्थित होओ । अपने प्रकाश से अन्तरिक्ष को चारों ओर भर दो, अपनी शक्ति से द्युलोक को ऊपर सम्भाल रखो । अपने तेज से दिशाओं को प्रदीप्त करो । हे पक्षिराज, तुम सुन्दर, उड़ने में समर्थ पंखों वाले, सर्वशोभन नारायण के वाहन और सर्पों को निगलने वाले गरुड़ पक्षी हो । पृथिवी तल पर श्री नारायण को लेकर विराजमान होओ । उनकी कान्ति से अन्तरिक्ष को भर दो और उनकी ज्योति से द्यु को स्तम्भित कर दो जिससे उनके तेज से दिशाओं का कोना कोना उद्भासित हो उठे ।[1]

---

1. सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्ष मापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृंह ।

वाजसनेयी संहिता । 7/72

एक अन्य स्थान पर 'उखा' (अग्निपात्र) में अग्नि को धारण करते हुए उसे एक पक्षी के रूप में मानकर उसके सिर, नेत्र, पंख, हृदयादि की कल्पना की गयी है और उसे आकाश में उड़कर देवों तक हवि पहुँचाने के लिए प्रेरित किया गया है । हे अग्ने, शोभनपतनशील होने के कारण तुम सुपर्ण हो, जैसे कि गरुड़, पंखों वाला होने से सुपर्ण है ।[1] सायण ने सुपर्णोऽसि गरुत्मान् शब्द की स्पष्ट व्याख्या करके शंका को दूर कर दिया है — सुपर्णोऽसीत्ययं मन्त्रो विकृतिरुच्यते अग्नेः पक्षपुच्छादिमत्सुपर्ण रूपेण तत्र विकार प्रतिपादनात् विकार प्रतिपादकमन्त्रेणाभिमन्त्रणमेवात्रविकरणम् ।

विष्णु और यज्ञ का घनिष्ठ तादात्म्य है । अग्नि यज्ञ को ले जाने वाला 'सुपर्ण' पक्षी है । अतः इस गरुत्मान् का यज्ञ रूप विष्णु का वाहन बन जाना अत्यन्त सहज एवम् स्वाभाविक है ।

---

1. सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमं आत्मा छन्दा स्यंगानि यजूँषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ।

वाजसनेयी संहिता 12/4

2. सायण भाष्य

वाजसनेयी संहिता में एक स्थान पर एक ही साथ तीन मन्त्र आये हैं और इनमें अग्नि को दिव्य सुपर्ण रूप में वर्णित किया गया है । इन मन्त्रों में कहा गया है कि - बलदायी घृत से मैं उस अग्नि को मुक्त करता हूँ जो कि द्युलोक से उत्पन्न हुआ है, अत्यन्त गतिशील और धूम से महान् है । इस यज्ञ रूप कर्म द्वारा हम आदित्य लोक में जाते हैं । इसके अनन्तर हम उसके ऊपर स्वर्ग में आरोहण करते हुए दुःख रहित श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करते हैं ।[1]

हे देव, तुम्हारे दोनों पंख सदा नये और गति शील रहते हैं, जिनके द्वारा तुम राक्षसों को मार गिराते हो । हे अग्ने, हम उन पंखों से पुण्यवानों के उस लोक में पहुचें जहाँ कि हमारे पूर्वज सनकादि ऋषि पहुँचे हैं ।[2] तीसरे मन्त्र में भी इसी प्रकार अग्नि को सुपर्ण मानकर नमस्कार किया गया है ।[3]

---

1. अग्निं युनाम्मि शवसा घृतेन दिव्य सुपर्ण वयसा बृहन्तम । तेन वयं गमेम ब्रन्धस्य विष्टप स्वोरुहाणा अधि नाक मुत्तमम् । 51

2. इमौ ते पाक्षवजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांसि अपहंस्यग्ने ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः । 52

3. इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनोभुरण्युः महान्त्सधस्थे ध्रुवआ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा हिं सीः । 53 वाजसनेयी संहिता 18/51, 52, 53

मैकडानल[1] तथा हॉपकिन्स[2] का विचार है कि पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर जाता हुआ सूर्य का बिम्ब ही वैदिक ऋषियों की कल्पना में व्योम हारी गरुड़ हैं । ऋग्वेद दशम मण्डल में सूर्य के लिए गरुत्मान् विशेषण दो बार आया है जो उत्तरवर्ती साहित्य में गरुड़ का वाची है । किन्तु इन दोनों पाश्चात्य विद्वानों का मत दोष पूर्ण है । भगवान् विष्णु को सूर्य का आधि दैविक प्रतीक मानने पर सूर्य-बिम्ब को विष्णु का वाहन गरुड़ मानना तर्कहीन सा प्रतीत होता है ।

सामवेद में विष्णु का स्वरूप

सामवेद को वैदिक साहित्य के अनुसन्धान कर्त्ताओं ने वैदिक भाषा के अध्ययन के पश्चात् निर्विवाद रूप से संगीत साहित्य का उद्गम स्थल बताया है । केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व साहित्य में सर्वप्रथम संगीत विद्या का जन्म सामवेद में हुआ है । वृहद्देवता ने इसके महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुए कहा है कि - 'जो मनुष्य सामवेद को नहीं जानता वह वेद रहस्य को नहीं जानता है ।[3]

---

1. मैकडानल - वैदिक मैथालोजी पृष्ठ संख्या 152
2. हॉपकिन्स - रिलिजन्स आफ द इन्डिया पृष्ठ संख्या 45
3. सामानि यो वेत्ति स वेद तत्वम् । वृहद्देवता

श्रीमद्भगवद्गीता में विष्णु अवतारी लीलाधारी कृष्ण ने स्वयम् कहा है कि - 'मैं वेदों में सामवेद हूँ ।[1]

वैदिक वाङ्मय में साम शब्द के दो अर्थ हैं । एक तो ऋचाओं के ऊपर गाये जाने वाले गान साम हैं । दूसरे केवल ऋग्वेद के मन्त्रों के लिये प्रयोग होने वाले गान साम हैं । सामवेद का सङ्कलन उद्गाता नामक ऋत्विज् के लिए किया गया है , जो मन्त्रों को तारस्वर में आवश्यकता के अनुसार गाता है । संक्षेप में ऋचाओं पर भिन्न-भिन्न स्वरों में गाये जाने वाले गीत को साम शब्द से अभिहित किया गया है । सामवेद में ऋचाओं की संख्या 1810 है । इनमें कुछ ऋचाओं की पौनः पुन्येन आवृत्ति हुई है । इन ऋचाओं को पृथक् कर देने से मौलिक ऋचाओं की संख्या 1549 है । इनमें से 75 मन्त्रों को छोड़कर शेष सभी मन्त्र ऋग्वेद के अष्टम एवम् नवम मण्डल से सङ्कलित किए गये हैं । इन मन्त्रों की रचना अधिकांशतः गायत्री एवम् प्रगाथ छन्दों में की गयी है । उपर्युक्त 75 मन्त्रों का सङ्कलन

---

1. वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामास्मि वासवः ।

   इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामास्मि चेतना ।।

   श्रीमद भगवद्गीता 10/22

अन्य संहिताओं से किया गया है । याज्ञिक अवसर पर सामवेदी ब्राह्मण इन ऋचाओं का स्वरबद्ध गान करके देवताओं को प्रसन्न करता था । सामवेद की ऋचाओं के संगीतमय गान के लिए उसमें कुछ पद अलग से जोड़ दिए जाते थे । यथा - हाऊ, होई, हो और ओह आदि। इन्हें 'स्तोभ' की संज्ञा प्रदान की गयी है । जैमिनीय सूत्र तथा वृहदारण्यकोपनिषद् में 'गीतिषुसामाख्या' तथा 'साम्नो गति स्वर होवाच' गीति ही साम है और स्वर ही साम का स्वरूप है, ऐसा कहा गया है । वैदिक साहित्य में साम गान के पाँच प्रकार निर्दिष्ट है - प्रस्ताव, उदगीथ, प्रतिहार, उपद्रव, निधन । प्रस्ताव का गान प्रस्तोता, उदगीथ का गान उदगाता, प्रतिहार का प्रतिहार तथा उपद्रव का गान उदगाता नाम का ऋत्विज् करता था । निधन का पाठ प्रस्तोता, उदगाता एवम प्रति-हार तीनों मिलकर करते थे ।

सामवेद में 'स्वरों' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उच्चारण की दृष्टि से स्वर तीन प्रकार के होते हैं - उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । परन्तु संगीत की दृष्टि से स्वर सात प्रकार के होते हैं - मध्यम, गन्धार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत और पञ्चम । सामवेद में गेय पदों के ऊपर अङ्कों द्वारा सङ्गीत स्वरों को निर्देशित किया गया है । गीति तत्त्व यज्ञों पर अनुपम स्वरों में गाये जाते हैं, जिससे देवतागण अतिशीघ्र प्रसन्न होकर अपना हविष्य ग्रहण कर लेते हैं ।

साहित्य की दृष्टि से सामवेद का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। सामवेद में ऋग्वेद के मन्त्रों का ही संकलन होने के कारण संगीत को छोड़कर ऋग्वेद से भिन्न इसकी अपनी कोई विशेषता नहीं है। यही कारण है कि ऋग्वेद के देवमण्डल में वर्णित विष्णु की जो विशेषता है, वही सामवेद में भी है। जिन 75 ऋचाओं का संकलन ऋग्वेद से नहीं हुआ है उनमें विष्णु का नाम एक भी बार नहीं आया है। सामवेद में भगवान् विष्णु के तीनों पाद प्रक्षेपों की प्रशंसा संगीतमय रूप में की गयी है। इन्द्र से मित्रता, गो रक्षा, परमपद में मधु का उत्स, श्री के धारयिता, आदि उत्तम स्वरूपों का ही वर्णन सामवेद में भी हुआ है। सामवेद के जिन मन्त्रों में इन गुणों का प्रतिपादन किया गया है, वस्तुतः वे मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत हैं। अतः उनका पुनरुल्लेख तर्क-संगत न होगा।

अथर्ववेद में विष्णु का स्वरूप

प्राचीन भारतीय संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अथर्व-वेद का विशिष्ट एवम् गहन अध्ययन अनिवार्य है। भारतीय विश्वास के अनुरूप वर्तमान जीवन को सुखमय बनाने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, उन सभी की सिद्धि के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों का विधान अथर्ववेद में है।

साहित्य में वेदत्रयी तथा चतुर्वेद दोनों शब्दों का उल्लेख होने से भ्रम

होना स्वाभाविक ही है । ऋग्वेद,[1] ऐतरेय ब्राह्मण,[2] सायण की अथर्ववेदीय भूमिका,[3] मनु की स्मृति[4] में ऋक, यजु और साम का उल्लेख है । यजुर्वेद,[5] गोपथब्राह्मण,[6] मुण्डकोपनिषद,[7] बृहदारण्यकोपनिषद,[8] के उद्धरण से वेदत्रयी के

---

1. ऋचः सामानि जज्ञिरे ।..... यजुस्तमादजायत । ऋग्वेद 10/90/9

2. त्रयो वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदोवायोः सामवेद आदित्याद ।

   ऐतरेय ब्राह्मण 5/32

3. यं ऋषयस्त्रयिविदा विदुः । ऋचःसामानियजंषि ।

   सायणाचार्यकृत - अ० अथर्ववेदीय भाष्यभूमिका

4. अग्निवायुरविभ्यस्त त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।

   दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृगयजुःसाम लक्षणम् । मनु - स्मृति - 1/23

5. ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांसि जज्ञिरे । तस्मादयजुस्तस्माद जायत ।

   यजुर्वेद 31/7

6. चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो, यजुर्वेदो सामवेदो ब्रह्मवेदः ।

   गोपथब्राह्मण 1/2/16

7. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो थर्ववेदः । मुण्डकोपनिषद 1/1/5

8. अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो चजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः

   बृ०उ० 2/4/10

स्थान पर चतुर्वेद की अवधारणा की पुष्टि होती है । वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध अथर्वाङ्गिरस शब्द इस वेद का प्राचीनतम अभिधान है जिसका अर्थ है- अथर्वों एंव अङ्गिराओं का वेद । अथर्वन् शब्द यहाँ रोगनाशक अर्थ में आया है । जबकि में शत्रुओं एवम् दुष्ट मायावियों के अभिचार का विधान है । 'काव्य की दृष्टि से अथर्ववेद ऋक संहिता का पूरक है ।[1] इस संहिता में उदात्त भावनाओं से मण्डित तथा मानव हृदय को स्पर्श करने वाले गीति - काव्यों का सम्यक् प्रकारेण सङ्कलन हुआ है ।

विषय वस्तु की दृष्टिकोण से अथर्ववेद के अन्तर्गत आध्यात्मिक, आधि-भौतिक एवम् आधिदैविक तीनों ही विषयों का उल्लेख प्राप्त है । यदि एक ओर अथर्ववेद में अध्यात्म के अन्तर्गत ब्रह्मा, परमात्मा, चारों आश्रम तथा चारों वर्णों का उल्लेख है तो दूसरी ओर आधिभूत परक वर्णन के अन्तर्गत राजा, राज्यशासन, युद्ध, शत्रु वाहन, एवम् राज्याभिषेक आदि का वर्णन तथा आधि दैविक वर्णन के अन्तर्गत अनेक देवों तथा अनेक देवियों का वर्णन हुआ है ।

अथर्ववेद में - भैषज्यानि, आयुष्य, पौष्टिक, शृङ्गार, प्रायश्चित्त,

---

1. आचार्य वलदेव उपाध्याय - वैदिकसाहित्य और संस्कृति

पृष्ठ संख्या 163

स्त्रीकर्माणि, राजकर्माणि, याज्ञिक, कुन्ताप, तथा दार्शनिक सूक्तों का विस्तृत विवेचन हुआ है । इन सूक्तों के अन्तर्गत परवर्ती साहित्य विशेषकर इतिहास के मूल बीज विद्यमान थे । अथर्ववेद में 730 सूक्त तथा 6 हजार के लगभग मन्त्र हैं । इसमें लगभग 1800 मन्त्र ऋग्वेद के हैं ।[1]

डा० सर्वपल्लीराधाकृष्णन् के अनुसार अथर्ववेद को दीर्घ काल तक मान्यता प्राप्त नहीं हुई । यद्यपि हमारे मतलब के लिए ऋग्वेद के बाद इसका महत्त्व है, क्योंकि ऋग्वेद के समान यह भी स्वतंन्त्र विषयों का एक सङ्कलन है । यह वेद बिल्कुल एक भिन्न भाव से ओत-प्रोत है जो परवर्ती युग की विचार धारा की उपज है ।[2] वस्तुत: अथर्ववेद का प्रयास कर्मकाण्ड के व्यवहार में उतना नहीं है जितना जीवन के उचित-अनुचित, ऊँच नीच जनविश्वासों को प्रकट करने में है । इस दृष्टि से यह अन्य तीनों वेदों से कहीं अधिक महत्त्व इतिहासकार के लिए रखता है ।[3] सुप्रसिद्ध नैयायिक आचार्य जयन्त भट्ट इसे प्रथम वेद मानते हैं ।[4]

---

1. डा० रामकृष्ण शास्त्री - अथर्ववेद संहिता पृष्ठ संख्या 9
2. डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् - भा० दर्श० पृष्ठ संख्या 58
3. भगवत शरण उपाध्याय - हिन्दी विश्वकोष पृष्ठ सं०या 96
4. जयन्त भट्ट - न्यायमञ्जरी - पृष्ठ संख्या 25
   'तत्रवेदश्चत्वार: प्रथमोऽथर्ववेद: ' ।

का ही अथर्ववेद में सङ्कलन हुआ है । अथर्ववेद का देवमण्डल ऋग्वेद के देवमण्डल से भिन्न है । इसमें चन्द्र, वरूण और अग्नि देवता हैं, जिनका भौतिक प्रतीक लुप्त सा है । इस संहिता में काल, काम, उच्छिष्ट आदि का देव रूप में स्तवन हुआ है । फिर भी विष्णु, रूद्र, शिव और सूर्य को अधिक महत्त्व दिया गया है ।[1] अथर्ववेद में इन देवों की गणना प्रथम कोटि में की गयी है । अथर्व संहिता में विष्णु का प्रमुख कार्य राक्षसों का संहार, रोगों का विनाश, तथा शत्रुओं का पराभव करना है । विष्णु को भ्रूण रक्षक भी बताया गया है । सम्पूर्ण अथर्ववेद के अध्ययन के पश्चात् विष्णु के स्वभाव (स्वरूप) को इस प्रकार शब्दवद्ध किया जा सकता है —

यज्ञीयदेवमण्डल में विष्णु

अथर्ववेद में यदि एक ओर देवताओं का पृथक-पृथक महत्त्व विकसित विचारों को जन्म देता है, तो दूसरी ओर नवीन विभेदों को भी उत्पन्न करता है । क्यों कि अथर्ववेद में प्राय: कई देवताओं का एक साथ आह्वान किया गया है । इस संहिता में पृथक्-पृथक् देवताओं की प्रशस्ति के सूक्त अत्यन्त कम मिलते हैं ।

---

1. डा० रामकृष्ण शास्त्री - अथर्वसंहिता पृष्ठ संख्या 28

विष्णु का यज्ञों में प्रायः अन्य देवों के साथ स्तवन किया गया है । विष्णु के साथ स्तुत्य देव वरुण, इन्द्र और अग्नि हैं । देव विष्णु इन देवताओं के साथ नमित होते हुए यज्ञ एवम् यजमान की रक्षा करते हैं । अथर्ववेद में ऋग्वेद की तरहही विष्णु के क्रिया कलाप प्रशंसित है ।

1. इन्द्र के साथ विष्णु

यज्ञ मार्ग की मर्यादा के प्रतिष्ठापक, धार्मिक कृत्यों से गम्य, तथा जगत् के एकमात्र अधिष्ठाता भगवान् विष्णु का पराक्रमी इन्द्र से प्राचीन सम्बन्ध है । ऋग्वेद का 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः' तथा 'उरुक्रमिष्ठ जीवसे' इसका पुष्ट प्रमाण है ।[1] अथर्ववेद में दोनों को एक साथ शत्रु को पराजित करने वाला प्रदर्शित किया गया है । एक मन्त्र के अनुसार इन्द्र और विष्णु दोनों शत्रु को जीत लेते हैं, इन दोनों में कोई भी शत्रु के द्वारा नहीं जीता जा सकता । इन्द्र और विष्णु जब शत्रु से स्पर्धा करते हैं, तब विष्णु लोक वेद वाणी के त्रिक से उन दैत्यों को हराते हैं ।[2]

---

1. ऋग्वेद 10/180/2, 1/154/2

2. उभा जिग्यथुर्न परा येथे न पर जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।

 इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्त्रं वितदैरयेथम ।।

 अथर्ववेदसंहिता 7/45/1

अतः इन्द्र ने सर्वदा विष्णु की सहायता से ही विजय प्राप्त किया है । यद्यपि यह निर्विवाद सत्य है कि वेदों में इन्द्र विष्णु की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली देव हैं लेकिन इन्द्र के विजय का प्रमुख श्रेय विष्णु को ही है । यही कारण है कि विष्णु को उपेन्द्र कहा गया है ।

2. वरुण के साथ विष्णु

अथर्ववेद में वरूण के साथ विष्णु का स्तवन यज्ञों में हुआ है । एक मन्त्र के अनुसार जिन दोनों के बल से लोक लोकान्तर थमे हुए हैं, जो अपने वीर कार्यों के द्वारा अत्यन्त वीर और बलवान् प्रसिद्ध हैं और जो दोनों अपने शत्रु अभिभावी कार्यों के द्वारा सदा अजेय अप्रतिहत रहकर, शत्रु के समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी होते हैं, उन्हीं विष्णु और वरुण को आहुति देने वाला मैं यजमान प्राप्त होता हूँ ।[1] दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि जिस विष्णु और वरुण के अनुशासन में यह सब चमकता है, जो श्वासोच्छवास लेता है और स्वकार्यों के द्वारा सर्वजगत् को विशेष रूप से देखता है उसी विष्णु तथा वरूण देव के बल से आवर्जित होकर मैं सर्वप्रथम

---

1. ययोरोजसा स्कभिता रजांसियौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।
   यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन वरुणं पूर्वहूतिः ।।
   अथर्ववेद 7/25/1

आहुति करने वाला इन वरुण-विष्णु के शरण में प्राप्त होता है ।[1]

3. अग्नि के साथ विष्णु

यज्ञ में अग्नि केवल हवियों के निष्क्रिय ग्रहण कर्त्ता ही नहीं अपितु पृथिवी और द्युलोक के बीच एक मध्यस्थ हैं । यदि यह एक ओर विष्णु को प्रसन्न करने के लिए हवि को उनके समीप तक पहुँचाते हैं, तो दूसरी ओर उनको यज्ञ में लाकर, उनके साथ स्वयं हवि ग्रहण करते हुए प्रसन्न होते हैं । अथर्ववेद में दोनों देवों का घृत पीने के लिए एक साथ आह्वान किया गया है । एक मन्त्र में उल्लिखित है कि - हे अग्ने हे विष्णो तुम दोनों का वह प्रसिद्ध महत्त्व पूजनीय है । तुम दोनों गोपनीय घृत को पियो । तुम घर-घर में सात गो - अश्वादि पशुरूप रत्नों को प्रदान करो । तुम दोनों की जिह्वा हूयमान घृत का आस्वादन करें ।[2] इसके बाद वाले मन्त्र में भी दोनों का घृत के लिए आह्वान है ।[3]

---

1. यस्येदं प्रतिशि यद विरोचते प्र चानाति वि च चष्टे शचीभिः ।
   पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ।।

   अथर्ववेद 7/25/2

2. अग्नाविष्णू महि तद वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
   दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात ।।

   अथर्ववेद 7/29/1

3. अग्नाविष्णू महि धामप्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
   दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात ।। 7/29/2

सिनीवालि का विष्णु से सम्बन्ध

अथर्ववेद में सिनीवालि की कल्पना सुन्दर भुजाओं वाली, सहस्त्रों जूटों वाली तथा शोभमानाङ्गुलि वाली रमणीय देवी के रूप में की गयी है । यज्ञ में हवि देते हुए इस देवी से सन्तान की कामना की जाती है ।[1] सिनीवालि को विष्णु की पत्नी के रूप में प्रदर्शित किया गया है । अथर्ववेद के एक मन्त्र में उल्लिखित है कि - हे देवी, तुम विश्व को पालने वाली, प्रत्यक् गमना, सहस्त्र जूटवाली और इन्द्र को प्राप्त होने वाली देवी हो । हे विष्णु की पत्नी यह हवियाँ तुम्हें प्रदान की गयी हैं, तुम इनका सेवन करो और अपने पति विष्णु को हमें धन प्रदान करने के लिए प्रेरित करो ।[2] सिनीवालि के अतिरिक्त सरस्वती को भी विष्णु-पत्नी के रूप में प्रतिपादित किया गया है ।[3]

---

1. या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
   तस्यै विश्वपत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ।।

   अथर्ववेद 7/48/2

2. या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्त्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
   विष्णोः पत्नी तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवी राधसेचोदयस्व ।।

   अथर्ववेद 7/48/3

3. प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति । अथर्ववेद 14/2/15

भ्रूण रक्षक विष्णु

अथर्ववेद में गर्भाधान संस्कार के सुअवसर पर विष्णु का आह्वान किया जाता है । इस समय पुरुष 'विष्णुर्योनिम्' मन्त्र का उच्चारण करता है । यह संस्कार प्रथम गर्भाधान के समय ही करना चाहिए । मन्त्रोचारण के बिना किया हुआ गर्भाधान संस्कार अशुद्ध होता है तथा स्त्री के गर्भ में पलने वाला शिशु दूषित होता है ।[1] एक मन्त्र में निर्दिष्ट है कि - हे नारी तुम्हारे योनि को विष्णु देव गर्भ धारण के योग्य बनावें । तुम्हारे गर्भ के स्वरूप को त्वष्टा देव निर्धारित करें । प्रजापति तुममें गर्भ को आसिञ्चित करें । धाता तुम्हारे गर्भ को धारण करें ।[2] गर्भावस्था में निरन्तर विष्णु देव का ध्यान करने से यह कृपालु देव गर्भ की रक्षा करते हैं ।

---

1. विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती ।

   गर्भाधानस्याकरणादस्यां जातस्तु दुष्यति ।।

   वी0मि0सं0 भाग । पृष्ठ संख्या ।75

2. विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।

   आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।।

   अथर्ववेद 5/25/5

विष्णु का सुदर्शन चक्र

सुदर्शन चक्र सृष्टि कर्त्ता विष्णु का विशेष आयुध तथा प्रिय अस्त्र है । इस अमर कालचक्र में सात चक्र तथा सात नाभियां हैं । यह संवत्सर चक्र सदैव घूमा करता है । सम्पूर्ण विश्व इसी संवत्सर या वर्ष के अन्दर निवास करता है ।[1] अथर्ववेद में इस चक्र में विद्यमान सप्त चक्र तथा सप्त नाभियाँ सप्ताह के सात दिनों के द्योतक हैं । पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र सूर्य का प्रतीक है,[2] क्योंकि वेदों में सूर्य को विशेष आयुध कहा गया है ।[3] इन विद्वानों की विचार धारायें पूर्ण रूपेण भ्रामक प्रतीत होती हैं क्योंकि वेदों में संवत्सर या वर्ष की कल्पना एक चक्र के रूप में की गयी है ।

---

1. सप्तचक्रान् वहति देव एष सप्तास्यनाभीरमृतंनु अक्षः

   स इमा विश्वा भुवनान्य जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ।।

   अथर्ववेद 19/53/2

2. कून - हेरबकुम्पट डेस फायर्स उन्द डेस पृष्ठ संख्या 222

3. सूर्यो ज्योतिश्चरित चित्रमायुधम् । ऋग्वेद 5/63/4

अथर्ववेद में सवंत्सर चक्र की कल्पना ने ही विष्णु के सम्बन्ध में उनके सुदर्शन चक्र तथा सूर्य के सम्बन्ध में उनके रथ के एक चक्र की धारणा को जन्म दिया । सत्यता तो यह है कि उत्तर वैदिक काल में जब विष्णु का व्यक्तित्व दैवीकरण की चरम-सीमा पर पहुँच गया और सर्वत्र अनुष्ठानों में विष्णु को प्रधान देव के रूप में पूजा जाने लगा, तो सुदर्शन चक्र मात्र अस्त्र बनकर रह गया और उसकी सम्पूर्ण ऋक् तथा अथर्ववेदीय विशेषता लुप्त सी हो गयी और परवर्ती काल में सुदर्शन चक्र विष्णु के प्रधान आयुध के रूप में जाना जाने लगा ।

श्री धारक विष्णु

'श्री' सभी प्रकार की विभूतियों के सम्मिलित तत्त्वों का मानवीकरण है । अथर्ववेद में इसकी कल्पना भूति या समृद्धि के रूप में की गयी है । प्राचीन काल से ही विष्णु का वसु से सम्बन्ध है । अतः वसु और धन की देवी 'श्री' से भी घनिष्ट सम्बन्ध हो जाना स्वाभाविक है । अथर्ववेद के एक मन्त्र में सन्दर्भित है कि - हे विष्णो द्युलोक से अथवा पृथिवी लोक से या फिर इस महान् अन्तरिक्ष से धनों के समूह से अपने हाथों को आपूरित करो, तदनन्तर अपने दाहिने हाथ से हमें वह धनसमूह प्रदान करो ।[1]

---

1. दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
   हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ।।

अथर्ववेद 7/26/8

एक अन्य स्थान पर श्री और भूति शब्द समानाधिकरण्य से एक साथ आये हैं ।[1]

अथर्ववेद में 'श्री' की कल्पना स्वतन्त्र देवी के रूप में नहीं हैं । एक स्थान पर श्री या शोभा से रहित को 'अश्रीर' या अश्लील कहा गया है ।[3]

---------::0::---------

---

1. संविदाना दिवा श्रिये श्रियां मां धेहि भूत्याम् ।

अथर्ववेद 12/1/63

2. अश्लीला तनू भर्ववति रुशती पापयामुया ।

14/1/27

3. यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्

अथर्ववेद 4/21/6

अध्याय तृतीय

ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु का स्वरूप

1. विष्णु का शब्दार्थ
2. विष्णु का तीनों लोकों पर पाद-प्रक्षेप
3. यज्ञ से तादात्म्य एवम् व्यपनशीलता
4. अवतारवाद के रूप में विष्णु
   - अ. विष्णु का वाराह रूप
   - ब. विष्णु का मत्स्यावतार
   - स. विष्णु का कूर्मावतार
   - द. विष्णु के अवतार सम्बन्धी कहानियों की उपादेयता
5. विष्णु द्वारा पशुओं की प्राप्ति
6. श्री: (लक्ष्मी) के साथ विष्णु
7. वेदों से ब्राह्मणगत विष्णु का वैशिष्ट्य

ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु का स्वरूप

वैदिक वाङ्मय में वैदिक संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का सर्वाधिक महत्त्व है। ब्राह्मण साहित्य से हमारा तात्पर्य यज्ञ विशेष पर किसी श्रेष्ठ मत के आचार्य के वाद से है। ब्राह्मण साहित्य मूल रूप से यज्ञ विधान पर वेदमूर्त्त पुरोहितों द्वारा की गयी व्याख्या है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वैदिक व्याख्या करने वाले ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण है।[1] इसका द्वितीय अर्थ यज्ञ है, "याज्ञिक कर्मकाण्ड की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ है"।[2] डॉ० बलदेव उपाध्याय के शब्दों में "ब्राह्मणों में मन्त्रों, कर्मों तथा विनियोगों की व्याख्या है, ब्राह्मणों का अन्तरङ्ग परीक्षण करने से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक एवम् आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करने वाला एक महनीय विश्वकोश है।[3] इन ग्रन्थों में कर्मकाण्डीय विषयों

---

1. ब्रह्म वै मन्त्रः। शतपथ ब्राह्मण - 7-1-1-5.

2. ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यान ग्रन्थः।

   - भट्ट भास्कर-तैत्तिरीय संहिता भाष्य -1-5-1.

3. डॉ० बलदेव उपाध्याय-वैदिक साहित्य और संस्कृति ‌॥पृष्ठ संख्या239-40.॥

का मुख्य रूप से उल्लेख प्राप्त है ।

शबर स्वामी ने अपने भाष्य में ब्राह्मण साहित्य की विषय सामग्री तथा वैदिक सम्बन्ध का विशद् विवेचन किया है ।[1] पाश्चात्य विद्वान् विन्टर निट्ज के अनुसार ब्राह्मण शब्द का अर्थ है कि यज्ञ के विधि विधानों में कुशल विद्वान् पुरोहितों द्वारा यज्ञों के अवसर पर प्रयोग की जाने वाली संहिता भाग की विधियों का संकलन, उच्चारण, एवम् विवादों का संग्रह है ।[2]

डॉ० पाण्डेय के अनुसार "ब्राह्मण ग्रन्थों का सीधा सम्बन्ध वैदिक संहिता से वस्तुतः है" ।[3] डॉ० बलदेव उपाध्याय ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है "ब्राह्मणों में विधि वह केन्द्र विन्दु है, जिसके चारों ओर निरूक्ति, स्तुति, आरण्यक तथा हेतु वचनादि विविध विषय अपना आवर्तन पूरा किया करते हैं ।[4] स्वदेशी तथा विदेशी विद्वानों के विचारों की विषमता के बावजूद भी यज्ञीय कर्मकाण्डों के विषय में दोनों मतैक्य हैं । सभी विद्वान् मानते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ से ही सम्बन्धित

---

1. हेतुर्निर्वचन निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
   परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण कल्पना ॥
   उपमानं दर्शते तु विधियो ब्राह्मणस्य तु ॥ ‡शबर भाष्य-2-1-8.‡
2. विन्टरनिट्ज-भा०सा०का इ० ‡पृ०सं०-178.‡
3. डॉ० पाण्डेय एवम् जोशी-वैदिक साहित्य की रूपरेखा । ‡पृ०सं०-167.‡
4. डॉ० बलदेव उपाध्याय-वैदिक साहित्य और संस्कृति ‡पृ०सं०-243.‡

क्रिया कलापों का एक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करने वाला पवित्र संग्रह है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ से ही सम्बद्ध विषयों की उपस्थापना है । इसके अन्तर्गत विधि-अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, निर्वचन, पुराकल्प हेतु आदि विषयों की विनियोजना है तथा यज्ञ के अधिकारी, अनधिकारी का निर्णय तथा यागनिषिद्ध वस्तु की निन्दा एवम् यागोपयोगी द्रव्यों की प्रशंसा है । इसमें संयुक्तिक विधि-विधान है जहाँ कल्पना की अपेक्षा तर्क की उपादेयता है । ब्राह्मण ग्रन्थ परिपक्व विचारों से सम्भूत विकसित काल की कृतियाँ हैं जिनका सृजन ब्रह्मावर्त में हुआ था । ब्राह्मण काल में यज्ञ और प्रजापति का श्रेष्ठ स्थान है । ब्रह्मा (परमात्मा) प्रजापति के पद पर ही इस काल में आसीन है । यदि हम इसका गूढ़तम अध्ययन करें तो इसका आलोचनात्मक पक्ष भी उभर कर सामने आता है । ब्राह्मणों में ब्राह्मणों द्वारा याज्ञिक विधि विधानों में अपने को भूसुरत्व दिलाने की भावना प्रबल है । ये ब्राह्मण अपने लिए समग्र दान दक्षिणा का विधान किए हैं, जिससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उनके भावनाओं में पवित्रता के पुट नहीं हैं अपितु अस्वाभाविकता एवम् जटिलता के पुट हैं ।

विष्णु के स्वरूप का उल्लेख निम्न ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है ।

1. <u>ऐतरेय ब्राह्मण</u> : 1-1, 1-25, 1-30, 1-31, 6-3-7, 6-15, 1-3-4.

2. <u>तैत्तिरीय ब्राह्मण</u> : 1-5-1-4, 1-7-2-2, 1-7-44, 1-8-1-1-2, 3-2-9-7, 5-1-1-6, 5-1-7-1.

3. <u>कौषीतकी ब्राह्मण</u> : 4-2, 1-8, 18-4,

4. <u>शतपथ ब्राह्मण</u> : 1-1-2-13, 1-1-4-18-25, 1-4-5-3, 1-1-8-3, 1-2-5-10, 2-1-4-9, 3-2-4-12, 3-3-4-21, 3-4-4-15, 3-3-4-14, 3-6-3-3, 4-1-5-15, 5-1-3-9, 5-2-3-6, 5-4-2-6, 5-4-5-1, 6-1-1-12, 7-5-1-2, 8-4-3-20, 10-1-4-14, 11-1-8-3, 11-4-3-1, 11-4-3-1-4, 11-4-4-11, 12-3-5-1, 14-3-2-1.

<u>गोपथ ब्राह्मण</u> : 2-4-11.

<u>ताण्ड्य ब्राह्मण</u> : 21-4-6.

शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य सभी ब्राह्मणों में यत्र-तत्र विष्णु का उल्लेख प्राप्त होता है । उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त अन्य बहुत से स्थल ऐसे हैं जहाँ

परोक्ष रूप से विष्णु के स्वरूप की स्निग्धता परिलक्षित होती है ।

ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विश्व साहित्य में कर्मकाण्ड और याज्ञिक विधि विधानों का इतना साङ्गोपाङ्ग, स्वतन्त्र एवम् मौलिक विवेचन अन्यत्र असम्भव है । इसमें कर्मकाण्डीय विषयों पर उदीयमान समस्याओं का समाधान है, जिसके आधार पर यदि हम इसे यज्ञों की संहिता कहें तो समीचीन ही होगा । अतः यज्ञ एवम् कर्मकाण्ड का व्याख्यात्मक ग्रन्थ ब्राह्मण है । मैंने प्रथम अध्याय में ही प्रकाशित तथा उपलब्ध ग्रन्थों का विस्तृत विवेचन कर दिया है, अतः उसका पुनरूल्लेख अनुचित होगा ।

मानव प्रकृति से ही प्राकृतिक शक्तियों का उपासक है । वह किसी देवता की प्रसन्नता में अपनी पूर्णसिद्धि की कामना करता है । इस काल में देवताओं को खुश करने के लिए वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड का चरम विकास हो चुका था । मानव मात्र का अनुष्ठेय कर्म यज्ञ ही था । तत्कालीन समाज की मान्यता थी कि समस्त सुखों तथा वैभव की उपलब्धि यज्ञ कर्म से होती है । ब्राह्मण काल में यज्ञ ही देवता था, वही विष्णु भी था । यज्ञ ही देवपूजा, सङ्गति, दान आदि का आधार था । पाश्चात्य विद्वान् विन्टरनित्ज के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ

कर्मरूपी नीरस झाड़-झंखाड़ तथा व्यर्थ की बकवास है ।[1] मैक्समूलर ने भी इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि ब्राह्मणों की उपयोगिता केवल भारतीय के लिए है । किसी भी विदेशी को इससे कोई लाभ नहीं है ।[2] परन्तु इन विद्वानों की आलोचनायें अप्रासङ्गिक एवम् सारहीन ही नहीं अपितु तर्कहीन भी हैं ।

ब्राह्मणों के पुराकथाशास्त्र में विष्णु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देव हैं ।[3] इनमें विष्णु को प्रधान देवता के रूप में स्वीकारा गया है । यज्ञों की निर्विघ्न समाप्ति तथा मनोकामना की पूर्ति एवम् कल्याण के लिए इनका पवित्रता से स्तवन किया गया है । विष्णु विश्व रचयिता एवम् निखिल ब्रह्माण्ड के आच्छादक हैं । ब्राह्मणों के आधार पर इनके स्वरूप का पूर्ण निर्धारण हमने निम्न आयामों में किया है ।

<u>'विष्णु' का शब्दार्थ</u>-वेदों में चतुर्थ कोटि के देव विष्णु ब्राह्मणों में प्रथम-श्रेणी के देवता माने जाते हैं । ब्राह्मण काल में विष्णु अन्य देवों को अपने बढ़ते

---

1. विन्टरनित्ज : भारतीय साहित्य का इतिहास (पृ०सं०-155.)
2. मैक्समूलर : ऋग्वेद का अनुवाद (प्रथम भाग) पृ०सं०-117.
3. मैकडानल : वैदिक मैथालोजी (पृ०सं०-69.)

हुए प्रभाव के कारण पृष्ठभूमि में छोड़कर परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। वेदों में इस शब्द का वृहत् अर्थ न प्राप्त होने के कारण हमने ब्राह्मण ग्रन्थों में ही विभिन्न भारतीय एवम् पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर उल्लेख करने का प्रयास किया है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस शब्द की विभिन्नरूपों में भिन्न-भिन्न व्याख्या की है।[1] जे० खोण्डा के अनुसार-यह शब्द विष्णु के एकपक्षीय विशेषता को प्रकट करता है, ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में विष्णु को वृत्रवध में इन्द्र की सहायता करके नदियों को प्रवाहित करने तथा बल प्रयोग से बद्ध गायों को मुक्त कराने में सहायता करते हुए वर्णित किया गया है। ब्लूम फील्ड का मत है कि वि+स्नु से विष्णु से शब्द निर्मित है। स्नु का अर्थ सानु अर्थात् शिखर या ऊपरी धरातल। वि उपसर्ग से होकर (अंग्रेजी through) का भाव व्यक्त करता है। इस प्रकार इस शब्द का अभिप्राय वह देवता जो पृथ्वी के पृष्ठ भाग से होकर जाता है।[2]

हापकिन्स ने इस शब्द की व्युत्पत्ति धातु पाठ के आधार पर गत्यर्थक

---

1. जे० खोण्डा - आ० आफ अर्ली विष्णुइज्म। (पृष्ठ संख्या-55.)
2. ब्लूमफील्ड - दि रिलीजन आफ दी वेद (पृष्ठ संख्या-168.)

   (ख) अमेरिकन जनरल आफ दी फिलालाजी भाग-27 (पृष्ठ संख्या-428.)

वि या वी धातु से मानने का प्रस्ताव रखा है ।[1] मैकडॉनल ने भी उक्त मत का समर्थन करके विष्णु को गत्यर्थक धातु से सम्बद्ध माना है । इस विद्वान् ने भी धातुपाठ के आधार पर इस शब्द की व्युत्पत्ति विष् ॥विप्रयोगे॥ धातु से बताया है ।[2] पीटर्स बुर्ग कोश के अनुसार इसका मूल अर्थ क्रियाशील या गतिमान होना है ।[3] इन दोनों विद्वानों के मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विष्णु गतिशील देवता हैं और वे निरन्तर गतिशील रहते हैं । यद्यपि विष्णु के विषय में यह तथ्य एकपक्षीय निरूपण करते हैं फिर भी विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति पर सम्यक् प्रकाश डालते हैं । एक अन्य पाश्चात्य विद्वान् ओल्डेनवर्ग ने विष्णु का अर्थ विस्तृत क्षेत्रों का अधिपति अथवा भूमि के विस्तीर्ण क्षेत्र ॥स्नु॥ को पार करने वाला, ऐसा माना है । अतः विष्णु वह देव है जो सम्पूर्ण पृथ्वी का परिक्रमण करता है ।[3] जर्मन के एक महान् वैज्ञानिक एवम्

---

1. हापकिन्स - ज0अ0प्त0अ0अ0ओ0स0 भाग-6 ॥पृष्ठ संख्या-264.॥
2. मैकडानल - वैदिक मैथोलाजी ॥पृष्ठ संख्या-80.॥
3. गति व्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । धातुपाठ-1048.

   ॥ख॥ धातु पाठ - 1527.

   ॥ग॥ ओल्डेन वर्ग - रि0डे0वे0 ॥पृष्ठ संख्या-230.॥

कुशल शिक्षाविद् ग्युन्टर्ट ने भी ओल्डेनबर्ग के मत को उपयुक्त ठहराते हुए इस पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है ।[1] उनके अनुसार विष्णु शब्द का भाव ऐसे देवता या प्राकृतिक शक्ति से है जिसने भूमि के तल को चपटा करके उसे प्रथित किया अथवा फैलाया है । महर्षि पाणिनि के एक सूत्र के आधार पर दो विद्वानों ने इस शब्द का व्यापक अर्थ बताया है । टामस, ब्लाख, एवम् जोहन्सन के अनुसार विष्णु शब्द में जिष्णु (विजयी) शब्द के सदृश स्नु प्रत्यय की उपस्थिति मानी है और मूल वी है ।[2] यद्यपि यह शब्द तर्कहीन है क्योंकि पाणिनि का सूत्र जिधातु से ही स्नु प्रत्यय करता है वि से नहीं तथा जि की भाँति वि कोई धातु भी नहीं है । इन विद्वानों ने वि धातु से श्रेष्ठ पक्षी के अर्थ में कल्पना की है और यही पक्षी सूर्य को द्योतित करता है ।[3]

वेदों में भी विष्णु का संक्षिप्त अर्थ एक दो स्थलों पर प्राप्त होता है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में विष्णु का अर्थ,-मुक्त, विस्तृत या स्वतन्त्र है ।[4] अन्य वेदों में इसका कोई शाब्दिक अर्थ नहीं प्राप्त होता है ।

---

1. ग्युन्टर्ट - डेडर आ० वेल्ट० उ० हा० । (पृष्ठ संख्या-306.)
2. थामस ब्लाख - वेर्टर उन्ट जाखेन । (पृष्ठ संख्या-80.)
3. (क) जोहन्सन - यू०डी०आ०गौ०धि० । (पृष्ठ संख्या-48.)
   (ख) महर्षि पाणिनि - लघु सिद्धान्त कौमुदीय (3-2-139.)
4. महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिता: पुरस्तात् ।
   घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सु प्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्य: ॥ (ऋग्वेद-5-83-8.)

ब्राह्मणों में एक अति प्राचीन निरूक्त प्राप्त है "अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णु:" यह विन् बन्धने धातु से बना है। इसका अर्थ भी ऋग्वेद के सदृश विस्तृत मुक्त, खुला हुआ आदि है। उक्त दो स्थलों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं इसका अर्थ वेदों तथा ब्राह्मणों में उपलब्ध नहीं है। वैदिक साहित्य के पश्चात् इस शब्द की विस्तृत व्याख्या हुई है। पुराणों में तो विष्णु से स्वयम् कहलाया गया है कि मेरी विष्णु संज्ञा है। "मैंने पृथ्वी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रखा है, जगत का विक्रमण अर्थात आच्छादन करने या नाप लेने के कारण मेरी विष्णु संज्ञा है।[1]

पुराणों में विष्णु शब्द का व्यापक अर्थ मिलता है जो वृहद्देवता के निम्न मत के आधार पर है।

यथा- विष्णातेर्विशतेर्वा स्यात् वेवेष्टेर्व्याप्तिकर्मण:।
विष्णुर्निरूच्यते सूर्य: सर्व: सर्वान्तरश्च य: ॥[2]

---

1. व्याप्ता में रोदसी - क्रमणाच्चप्यहं विष्णु: पार्थ इत्यभिसंज्ञित:।
(महाभारत उद्योगपर्व-70-13.)

2. वृहद्देवताकार - 2-69.

• जग द्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे ।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ [1]

यस्माद् विष्टम् इदं सर्वं वामनेन महात्मना ।
तस्मात् स वै स्मृतो विष्णुः विशिर्धेतोः प्रवेशनात् ॥ [2]

इन सभी श्लोकों के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि विष्णु सूर्य का द्योतक है । अतः वैदिक कालीन ऋषियों से लेकर पुराण कालीन मुनियों ने विष्णु की कल्पना सूर्य के रूप में की है , जो निखिल ब्रह्माण्ड के आच्छादक एवम् पूर्ण प्रकाशक है । सूर्य के रूप में विष्णु की कल्पना भारतीय एवम् पाश्चात्य विद्वानों ने उसके शाब्दिक अर्थ के आधार पर किया है । निरूक्तकार यास्क जी ने भी इस शब्द की सुन्दर निरूक्ति अपने निरूक्त में किया है। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति विश् [प्रवेश] अथवा अशूङ् [अश्] [व्याप्त करना] धातु से मानी है ।[3]

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य [लौकिक तथा पारलौकिक] के शब्द कोश में

---

1. मत्स्य पुराण - 24-8-41.
2. विष्णु पुराण - 3-1-46.
   तथा कूर्म पुराण - 51-36.
3. यास्क - निरूक्त - 12-18.
   विष्णुविशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा ।

विष्णु शब्द की सर्वग्राहय व्याख्या के अभाव में कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने इसे आर्य भाषा का शब्द मानने से इनकार कर दिया है । डॉ० जे पर्लजकी ने तो इसे द्राविड़ भाषा का शब्द स्वीकार किया है । इन विद्वानों के अनुसार महाराष्ट्र के विष्णु का नाम विठोवा या विट्ठल है । अत: सम्भव है कि विश्ट, विट्ठ या विठ ऐसी कोई धातु इसके मूल में है । एफ० डब्ल्यू टाम्स का मत है कि जिस प्रकार कृष्ण शब्द का तमिल रूप आज क्रुष्टना है उसी प्रकार विष्णु का मूल रूप विश्टनु (विस्टनु) रहा होगा, जिसका संस्कृतिकरण विष्णु के रूप में कर लिया गया ।[1] परन्तु इन सभी विद्वानों का मत सत्य नहीं प्रतीत होता है । क्योंकि विष्णु शब्द का इस प्रकार से सारहीन अर्थ करना विवेक शीलता का परिचय नहीं देता है । वैदिक देव विष्णु का इस तरह का अर्थ तर्कहीन है । मैं संस्कृत शब्द संपदा का अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जे० खोण्डा ने विष्णु शब्द के विषय में जो तर्क दिया है वह तर्कपूर्ण है । जे० खोण्डा के शब्दों में "विष्णु के स्वरूप के विषय में भारत में चिरकाल से सम्मानित उस व्युत्पत्ति में बहुत सत्य है जो विष्णु को व्याप्ति से सम्बन्धित

---

1. मैकडानल - वैदिक मैथालोजी

करती है । जो लोग पारम्परिक व्याख्या से सम्बन्धित मत को अविश्वास के मत से देखते हैं उनको मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि जब मैंने अपना अनुसंधान प्रारम्भ किया तब मुझे यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट नहीं था ।[1] खोण्डा ने विष्णु को निर्भ्रान्त शब्दों में पुनः व्यपनशीलता एवम् विभुत्व का मूल आधार माना है ।[2] अन्ततोगत्वा खोण्डा ने संक्षेप में यह भी कह दिया कि "वस्तुतः विष्णु के प्रारम्भिक तथा मूल स्वरूप की जितनी सुन्दर व्याख्या भारतीय परम्परा प्रस्तुत करती है उतनी किसी भी विदेशी विद्वान् की नहीं ।" अतः मेरे अनुसार विष्णु वेदों से लेकर आज तक सभी ग्रन्थों में अधिष्ठातृ देव के रूप में पूजे जाते हैं । उनका महत्त्व हमारे यहाँ परम्परा के अनुसार सम्मानित देव के रूप में किया गया है ।

<u>विष्णु का तीनों लोकों पर विजय ।पाद - प्रक्षेप।:</u>

वैदिक संहिताओं के पश्चात् लगभग सभी ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु के त्रिविक्रम का उल्लेख प्राप्त होता है । इन ग्रन्थों में विष्णु के पाद - प्रक्षेप

---

1. जे० खोण्डा - आस्पेक्ट्स ।पृष्ठ संख्या- 172.।
2. जे० खोण्डा - आस्पेक्ट्स ।द्वितीय संस्करण। दिल्ली - 1969.

को याज्ञिक प्रक्रिया से सम्बद्ध किया गया है । ऐतरेय ब्राह्मण के आरम्भ में ही विष्णु के तीनों विक्रमणों का स्मरण किया गया है । अग्नि और सोम की भाँति इन्हें "सर्वा देवता:" कहा गया है ।[1] ऐतरेय ब्राह्मण के प्रथम मन्त्र के अनुसार विष्णु द्वारा सृष्टि की तीन पदों में रचना हुई है ।[2] इसी के अनुसार एक अन्य स्थल पर विष्णु तीन पादप्रक्षेपों के कारण क्रमशः त्रिलोकी, वेद एवम् वाक् के आच्छादक की संज्ञा से विभूषित किये गये हैं । इस ब्राह्मण में विष्णु के वामन अवतार की कथा का उल्लेख नहीं है । जबकि शतपथ तथा तैत्तिरीय आदि ब्राह्मणों में इनके त्रिविक्रम से सम्बन्धित वामन रूप की कथा भी प्राप्त होती है । विष्णु अपने पादप्रक्षेप से समस्त लोकों को आच्छादित कर लिए हैं । इन्द्र देवासुर संग्राम में विभाजन के समय असुरों को विष्णु के तीन पादक्रमों से अवशिष्ट स्थान को देने की प्रतिज्ञा करते हैं, परन्तु विष्णु अपने तीनों डगों में ही समस्त भुवन को व्याप्त कर लेते हैं अत: इन्द्र के पास देने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता ।[3]

---

1. डॉ० नाथूलाल पाठक - ऐ०ब्रा० का एक अध्ययन (पृष्ठ संख्या-182.)

2. ऐ० ब्रा० - 1-1.

3. इन्द्रश्च ह वैविष्णुश्च असुरै: युयुधाते । तान् हस्म् जित्वाऽऊचतु: कल्पामहै इति । ते हतथेत्यसुरा: ऊचु: । सोऽब्रवीद इन्द्रो यावदेवायं विष्णु: विक्रमते तावद् अस्माकम्, अथ युस्माकम इतरत् अति । स इमाँल्लोकान विचक्रमे अथो वेदान अथो वाचम् । ऐ०ब्रा० - 6-3-7.

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार कुछ विशेष यज्ञों में यजमान द्वारा पूर्व दिशा में तीन पग चलने का विधान है। ऐसा करने से यजमान को यज्ञ के समय में विष्णु की आंशिक शक्ति प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विष्णु ने तीन पद रखकर सभी लोकों पर विजय प्राप्त कर लिया था उसी प्रकार यजमान भी समस्त लोकों को जीत लेता है।[1] इस ब्राह्मण में यजमान द्वारा समस्त भुवनों पर विजय प्राप्त करने की कामना सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की कामना को निर्देशित करता है। मेरा विचार है कि इन तीनों पगों के रखने से यजमान प्रतीकात्मक रूप में इन्द्रिय निग्रह करके जितेन्द्रिय होने की कामना करता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार विष्णु अपने प्रथम पग में पृथ्वी, द्वितीय पग में अन्तरिक्ष और तृतीय पग में आकाश को व्याप्त करते हैं।[2] इसी तीसरे पग में मधु का उत्स है। शतपथ ब्राह्मण में इस तृतीय (उत्तम) या परमपद का सर्वाधिक महत्त्व है। यजमान यज्ञ द्वारा इस परमपद को प्राप्त करने की कामना करता है। इसी ब्राह्मण में एक अन्य स्थल पर बताया गया है कि राजसूय यज्ञ

---

1. विष्णु क्रमान क्रमते विष्णुर्भूत्वा इमाँल्लोकानभिजयति।
   - तैत्तिरीय ब्राह्मण - 1-7-4-4.

2. यद्देव विष्णु क्रमान क्रमते यज्ञो वै व्विष्णोः स देवेभ्यः इमां - तस्माद्विष्णु-क्रमान क्रमते तद्दा इति एव पराचीनं भूपिष्ठा इव क्रमन्ते।
   - शतपथ ब्राह्मण - 1-9-3-9.

के समय शार्दूलचर्म के ऊपर राजा के तीन पग चलने का विधान है । इन पाद प्रक्षेपों के करने से यजमान, जो अब तक इन भुवनों के अन्दर था, अब बाहर जो जायेगा ।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय है कि यजमान सांसारिक माया जाल से मुक्त होकर विष्णु के उस परमपद को प्राप्त करना चाहता है जहाँ साधारण मनुष्यों की दृष्टि भी नहीं पहुँचती और इस परम पद को प्राप्त करके मानव आवागमन से सदैव के लिए मुक्त होकर आनन्दित होने की कामना करता है ।[1] पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक हिलेब्राण्ट के अनुसार यज्ञकर्त्ता इन तीनों पगों का अनुसरण करता है और विष्णु के इन तीनों पगों को पृथ्वी से आरम्भ होकर द्युलोक में समाप्त मानता है ।[2] अवेस्ता के एक संस्कार में पृथ्वी से लेकर सूर्य के क्षेत्र तक बढ़ाये गये 'अम्षस्पन्दस' के तीन पग भी इन्हीं की अनुकृति हैं ।[3] विष्णु के त्रिविक्रम का सूक्ष्म पुट अन्य ब्राह्मणों में भी प्राप्त है । इस प्रकार विष्णु के पादप्रक्षेप का ब्राह्मण काल में प्रायः सभी ब्राह्मणों में उल्लेख किया

---

1. अथाक्रमते । विष्णुस्त्वाक्रमतामिति यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्यः इमां विक्रान्तिं विचक्रमे यैषामियां विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्याराथेद-मन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्त मेनैताम्वेवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञो विक्रान्तिं विक्रमते । ‡शतपथ ब्राह्मण - 1-1-2-13.‡
2. हिलेब्राण्ट - न्यू उन्ट वौलमॉण्डसोफर ‡पृष्ठ संख्या-171.‡
3. डर्मेस्टेटर - अवेस्ता का फ्रेन्च अनुवाद ‡पृष्ठ संख्या-401.‡

गया है । और देवताओं के कल्याणार्थ विष्णु ने तीन पादप्रक्षेप करके समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लिया है । विष्णु के इस महान् कार्य के कारण ही ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को पवमान तथा ब्रह्म पर्याय और समानुगण आदि का समानार्थी माना गया है ।[1] विष्णु व्याप्ति के कारण ही यज्ञ स्वरूप हैं ।[2] ऐतरेय ब्राह्मण में ही विष्णु को सर्व देवता, देवापरम, देवद्वापर, देवधर आदि पर्यायों से विभूषित किया गया है । इन सभी पर्यायों की तुलना अन्य ब्राह्मणों में भी प्राप्त होती है ।

<u>यज्ञ से तादात्म्य एवम् व्यापन शीलता</u> :

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का स्थान सर्वोपरि है । यज्ञ इहलोक में साक्षात् ऐश्वर्यरूप,[3] पापों, रोगों आदि का नाशक-शोधक[4] तथा परलोक में

---

1. शतपथ ब्राह्मण - ‡1-9-2-28, 2-1-4-21, 4-4-4-13, 11-1-1-2‡ ‡तुलना कीजिए ऐतरेय ब्राह्मण से‡
2. गोपथ ब्राह्मण - ‡3-8-4-12‡ तैत्तिरीय ब्राह्मण 3-2-3-1.
3. शतपथ ब्राह्मण - 1-7-1-9 से 14 तक ।
4. मैत्रायणी संहिता - 1-10-10-14, कौषीतकि - 5-1.

स्वर्ग प्राप्ति का साधन[1] एवम् अमरत्व का प्रापक है ।[2] अतः यही उत्तमकर्म है । शतपथ ब्राह्मण यज्ञ का निर्वचन करते हुए स्पष्ट कहता है 'विस्तारित-विकसित किया जाता हुआ जो उत्पन्न होता है, वह यज्ञ है ।[3] शतपथ ब्राह्मण के इस निर्वचन को केवल भारतीय वेदवेत्ता ही नहीं अपितु पाश्चात्य वेदज्ञ भी सहर्ष स्वीकार करते हैं । इन विद्वानों के अनुसार वैदिक यज्ञ ब्रह्माण्ड और पिण्ड की रचना करते हैं ।[4] क्रान्त द्रष्टा ऋषियों ने यज्ञों की शक्ति से कृतयुग और त्रेता के सन्धि काल में प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लिया था। प्राचीन काल में मुख्यतः तीन प्रकार के यज्ञ होते थे । 1. अग्निहोत्रयाग 2. दर्शपूर्णमासयाग 3. चातुर्मास्य। इन यज्ञों में सबसे प्राचीन अग्निहोत्र माना जाता है, तथा अन्य यज्ञों की कल्पना का उद्गम भी यही है ।

वैदिक यज्ञ अपनी महत्ता में जितना अप्रतिम है, अपनी विविधता

---

1. तैत्तिरीय संहिता - 6-34-7, शतपथ ब्राह्मण - 1-7-3-1.
   ऐतरेय ब्राह्मण - 1-19.

2. मैत्रायणी संहिता - 1-10-10-17, तैत्तिरीय संहिता - 1-6-8.

3. शतपथ ब्राह्मण -3-9-4-23.

4. डॉ० वेद कुमारी विद्या अलङ्कार - मैत्रायणी संहिता
   (पृष्ठ संख्या - 17-18.)

एवम् जटिलता में उतना ही अनुपम है । ब्राह्मणों में, इसी वैविध्य के कारण यज्ञों की संख्या का सही निर्धारण नहीं हो पाया है । फिर भी इन ग्रन्थों में 14 प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं । अग्न्याधान, पुनराधान, अन्युपस्थान, अग्निहोत्र-होम, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, सौत्रायणी, प्रवर्ग्य, गौनाभिक तथा अग्निचितियाग ।

ब्राह्मणों में बहुधा यज्ञ को पाँचवित्त अर्थात् पाँच अङ्गों वाला कहा गया है । महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने देवता, हविर्द्रव्य, मन्त्र ऋत्विग् और दक्षिणा को यज्ञ के पाँच अङ्गों में परिगणित किया गया है ।[1] वस्तुतः ये पाँचों यज्ञ के मूल तत्त्व हैं । देवता, मन्त्र और हवि यज्ञ के मूलतत्व हैं । इन्हीं के चतुर्दिक समस्त यज्ञ क्रियाओं का ताना बाना बुना जाता है । यजमान के बीजरूप संकल्प को पल्लवित और पुष्पित वृक्ष का रूप देने वाले अनुष्ठाता का चुनाव भी यजमान करता है । यदि यजमान यज्ञ की आत्मा है तो ऋत्विज् यज्ञ के अङ्ग हैं ।[2] वस्तुतः देवता यज्ञ का सर्वप्रथम एवम् महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । यज-मान यज्ञों के सम्पादन से देवताओं को प्रसन्न करके उनसे अपने अभीष्ट की कामना

---

1. डॉ० गोपीनाथकविराज - भारतीय संस्कृति और साधना । प्रथम खण्ड ॥पृष्ठ संख्या-168. ॥

2. शतपथ ब्राह्मण - 9-5-2-16.

करता है किन्तु सच्चाई तो यह है कि देवता यजमान की फलप्राप्ति का एक माध्यम मात्र है। फिर भी यह माध्यम फल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। देवता के अनुसार ही तत्सम्बन्धी मन्त्र और हवि का प्रयोग भी फल प्राप्ति के लिये साधन रूप ही है। मन्त्र और हवि का प्रयोग देवता के अनुरूप ही किया जाता है। याज्ञिक देवताओं का वर्गीकरण मुख्यत: तीन कोटियों में किया गया है। प्रथम कोटि में अग्नि, विष्णु, इन्द्र और सोम हैं। द्वितीय कोटि में-वरूण, अदिति, सविता, पूषा, मरूत्, विश्वेदेवा, द्यावापृथिवी तथा सरस्वती आदि हैं। तृतीय कोटि में-गौणदेवता हैं, इनका स्थान एक या दो यागों से अधिक में नहीं है। ये- अनुमति, राका, कुहू, सिनीवाली, निर्ऋति, पितर, मरूतों के क्रीडिन, सन्तापन, गृहमेधी रूप तथा त्रयम्बक आदि हैं।

ब्राह्मणों में विष्णु को प्रथमकोटि का देवता माना गया है। यजमान यज्ञों के सम्पादन से इस देवता को प्रसन्न कर अपनी अभीष्ट प्राप्ति के साथ-साथ परमपद ।विष्णुपद। को प्राप्त करना चाहता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु और यज्ञ का तादात्म्य सहज है। यज्ञ और विष्णु के पारस्परिक ऐकात्म्य को परिलक्षित कराने वाला 'यज्ञो वै विष्णु:' वाक्य शतपथ ब्राह्मण में सैकड़ों बार आया है। कौषीतकी तथा ऐतरेय ब्राह्मण में भी यज्ञ और विष्णु का तादूप्य प्राप्त है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार विष्णु यज्ञ और हव्य की रक्षा करते हुए

जड़ और चेतन, स्थावर और जङ्गम को अपने अन्दर व्याप्त कर लिये हैं। संसार के इसी आच्छादन क्रिया ने ही विष्णु और यज्ञ के तादात्म्य को प्रभावित किया है। यही कारण है कि प्रख्यात वैदिक व्याख्याता-आचार्य सायण ने 'यज्ञो वै विष्णुः' वाक्य की व्याख्या अति रोमाञ्चकारी ढंग से किया है। उनके अनुसार यज्ञ और विष्णु की एकरूपता तथा स्वतः विष्णु द्वारा यज्ञ की रक्षा से ही दोनों का तादात्म्य सिद्ध होता है।[1] शतपथ ब्राह्मण में ही विष्णु को यज्ञ कहा गया है।[2] शतपथ ब्राह्मण के एक उद्धरण के अनुसार एक बार देवताओं ने असुरों से वामन विष्णु के बराबर भूमि देने के लिये निवेदन किया और असुरों ने देने के लिए स्वीकार भी किया। यह जानकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और उसी क्षण वे अग्न्याधान करके विष्णु रूपी यज्ञ को अनेक छन्दों से बढ़ाने लगते हैं। गायत्री छन्द से दक्षिण, त्रिष्टुभ् छन्द से पश्चिम और जगती छन्द से उत्तर की तरफ से उसे परिगृहीत कर लिये और यज्ञ विष्णु सम्पूर्ण भुवनों को आच्छादित कर लेते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में ही एक और कथा है जो यज्ञ और विष्णु के व्यपनशीलता को प्रमाणित करती है। एक बार देवताओं ने कुरूप्रदेश की पवित्र भूमि

---

1. विष्णोर्यज्ञस्य च व्यपनसामान्यत तादात्म्य व्यपदेशः। सायण भाष्य
2. ते यज्ञमेव विष्णु पुरस्कृत्य इयुः। (शतपथ ब्राह्मण-1-27-5-1-7.)

पर यज्ञसत्र प्रारम्भ किया तथा यह निर्णय किया कि जो सर्वप्रथम यज्ञ के पूर्ण रहस्य को जान लेगा वही हममें श्रेष्ठ होगा । विष्णु ने उस रहस्य को सर्व-प्रथम जान लिया और देवताओं में उच्चतम स्थान पर विभूषित हुए । इसके पश्चात् विष्णु गर्व के साथ तीन वाण और एक धनुष लेकर वहाँ से चल दिये और एक अन्य प्रदेश में धनुष को सिर के नीचे रखकर विश्राम करने लगे । देवताओं के हृदय में विष्णु के प्रति ईर्ष्या भरी पड़ी थी। उन्होंने अविजित विष्णु को परास्त करने के लिए दीमकों को प्रलोभन देते हुए कहा कि यदि तुम विष्णु के धनुष की प्रत्यन्चा को काट दोगे तो हम तुम्हें अन्न और मरूस्थल में भी जल प्राप्त करने का आशीर्वाद देगें । स्वार्थपूर्ति के लिए दीमकों ने प्रत्यन्चा काट दी और धनुष उछला तथा विष्णु का सिर कट कर आकाश में जाकर सूर्य बन गया । और यहीं विष्णु मख ॥यज्ञ॥ है । संक्षेपतः इसी मख ॥यज्ञ॥ से विष्णु की व्यपनशीलता परि-लक्षित होती है ।

> तेषां कुरूक्षेत्रं देवयजनमास - ते होचुः यो नः श्रमेण तपसा श्रद्धया यज्ञेना हुतुभिः यज्ञस्योदृचं पूर्वो वगच्छत स नः श्रेष्ठो असत् - तार्द्विष्णुः प्रथमं प्राप । स देवानां श्रेष्ठं अभवत् । स यः स विष्णुः यज्ञः स, स यः सः यज्ञः असौ स आदित्य । तद्वेदं यशो विष्णुर्न शशाकं संयन्तुम - स उ एव मखः । स विष्णुः तथ इन्द्र मखानभवत ।
>
> -शतपथ ब्राह्मण - 14-1-1-13.

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार इस मख को सामानाधिकरण्य से वैष्णव कहा गया है । आगे चलकर यही ब्राह्मण यज्ञ और विष्णु की व्यपनशीलता को प्रमाणित करता है । तथा कहानी के नायक के रूप में विष्णु प्रणाम करता है । सायक और धनुष यज्ञ की हथेलियों से उत्पन्न हुए हैं, मुख के तेज से सोंवा बन जाता है । जिसका हविष्य के रूप में उपयोग कर देवता यज्ञ के तेज को पुन: जाग्रत करते हैं । ऐतरेय तथा कौषीतकी ब्राह्मणों ने भी यज्ञ और विष्णु के तादात्म्य को स्वीकारते हुए, विवेचित करते तथा विष्णु को यज्ञ के साथ संसार की रक्षा करते हुए एक उच्चकोटि के देवता के रूप में प्रणाम किया है एवम् स्पष्ट निर्देश दिया है कि यज्ञ धारक विष्णु ही विश्व के मनुष्यों का कल्याण करते हैं । कुछ पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने विष्णु और यज्ञ की व्यपनशीलता पर अपना मत प्रकट किया है ।

'डॉ० कीथ' के अनुसार विष्णु ने यज्ञ से तादात्म्य होने के कारण ही ब्राह्मणों तथा परवर्ती साहित्य में उच्चतम स्थान प्राप्त किया है ।[1] यद्यपि डॉ० कीथ ने अपनी अज्ञानता स्वीकार करते हुए कहा है कि जिस विष्णु का

---

1. डॉ० कीथ - रिलिजन एन्ड फिलास्फी प्रथम भाग ।पृष्ठ संख्या-111.।

ऋक् तथा यजुर्वेद में यज्ञ से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है वही विष्णु ब्राह्मणों में संसार को नियन्त्रित करने वाले सर्वोच्च तत्त्व यज्ञ से कैसे सम्बन्धित हो गये ।

डॉ० कीथ के शब्दों में 'जिस विश्रृंखलता से यह तादात्म्य उत्पन्न हुआ उसे अब ठीक से नहीं जाना जा सकता ।'[1] पाश्चात्य विद्वान् ने ज्ञानाभाव में विष्णु का यज्ञ से तादात्म्य स्वीकार किया है । इस प्रकार ब्राह्मण-साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यज्ञों से विष्णु का अभिन्न सम्बन्ध है तथा यज्ञों के अवसर पर हविष्यान्न ग्रहण कर प्रजा एवम् यजमान की रक्षा करते हुए विष्णु विश्वमानवों का कल्याण करते हैं । ब्राह्मण साहित्य में विष्णु की पूर्ण सामर्थ्यशीलता यज्ञों के साथ ही परिलक्षित होती है । यही कारण है कि किसी भी विद्वान् को विष्णु का यज्ञों से तादात्म्य के विषय में सन्देह नहीं होता है ।

---

1. डॉ० कीथ - रिलिजन एन्ड फिलास्फी प्रथम भाग
पृष्ठ संख्या-111.

<u>अवतारवाद के रूप में विष्णु</u> :

ब्राह्मण साहित्य में विष्णु के अवतार से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ प्राप्त होती हैं। जब-जब सृष्टि का विनाश हुआ है और चारों तरफ जल ही जल अवशिष्ट रहा, तब-तब दयालु विष्णु ने नवीन अवतार धारण करके सृष्टि की नूतन रचना प्रारम्भ की है। विष्णु को चाहे वराह के रूप में प्रकट होना पड़ा हो या मत्स्य वा कूर्म के रूप में। इस प्राकृतिक शक्ति ने जलप्लावन के समय में सृष्टि की रचना की है। ब्राह्मण साहित्य में विष्णु के इन्हीं तीनों अवतारों से सम्बन्धित कथाएँ प्राप्त होती हैं। ये कथाएँ शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लिखित हैं। विष्णु के इन्हीं तीनों अवतारों का वर्णन हम क्रमशः वराह रूप, मत्स्य रूप तथा कूर्मरूप में आगे कर रहे हैं।

<u>विष्णु का वराह रूप</u> :

विष्णु के वराह रूप का सूक्ष्म अङ्कुर वैदिक संहिताओं में भी प्राप्त होता है परन्तु उसका विस्तृत उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में ही हुआ है। विष्णु ने पृथिवी की रक्षा के लिये यज्ञ वराह रूप धारण किया था। वैदिक संहिताओं में वराह असुरत्व का प्रतिनिधि है, परन्तु शतपथ ब्राह्मण में यह जनहित में निहित एक श्रेष्ठ सामर्थ्य शालिनी शक्ति है। यहाँ विष्णु को सम्पूर्ण पृथिवी का

स्वामी बताया गया है और प्रजापति से उसका तादात्म्य स्थापित किया गया है ।[1] शतपथ ब्राह्मण में प्रवर्ग्य के लिए धर्मपात्र बनाते समय वन्य वराह द्वारा उत्तरवात्त मृत्तिका ग्रहण करने का भी विधान है । इसी वराह का दूसरा नाम एमूष भी है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी विष्णु के द्वारा पृथिवी उद्धार की कथा अति विस्तार से दी गयी है ।[2] सङ्क्षेप में विष्णु यज्ञ वराह रूप में प्रकट होकर जलप्लावन के समय लोक कल्याण के लिए सृष्टि की रचना करते हैं । यही यज्ञ वराहावतार की कथा पुराणों में चलकर अतिविस्तार से प्राप्त होती है । अब एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि इन्द्र के द्वारा वध किये जाने वाले तथा विष्णु द्वारा धन चुराये हुए वराह की कथा तथा वराह रूप धारण करके प्रजापति द्वारा पृथिवी के उद्धार की कथा का एक दूसरे से सम्बन्ध है या नहीं । क्या दोनों वराह रूप एक ही हैं । सभी पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार द्वितीय कथा प्रथम कथा का ही स्वाभाविके रूप है ।[3] इन विद्वानों ने दोनों वराह की एकता का सबसे बड़ा प्रमाण एमुष और एमूष को माना है ।

---

1. शतपथ ब्राह्मण - 14-1-2-11.
2. इयती वा इयमग्रे पृथिवी आस । प्रदेशमात्री ताम एमूष इति वराह उज्जधान स: अस्या: पति: प्रजापति: तेन् एव एवम् एतत् मिथुनेन प्रिएण धाम्ना समर्दयति । तैत्तिरीय ब्राह्मण - 1-1-3-5.
3. मैकडानल - वैदिक मैथालोजी पृष्ठ संख्या-41.

ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन के पश्चात् मेरा मत है कि-ये दोनों कथाएँ एक दूसरे से असंबद्ध है। प्रथम कथा में वराह एक देव विरोधी असुर है जो प्राय: देवताओं का धन हड़प कर उन्हें परेशान करता है और देवों की रक्षा के लिए देवेन्द्र को इसका वध करना पड़ता है।[1] जबकि दूसरी कथा में जब पृथिवी जल-मग्न हो चुकी है तो एक शूकर (वराह) उसे निकाल कर जल के ऊपर स्थापित करता है। यह शूकर प्रजापति का ही दूसरा अवतार है। अत: दोनों कथाओं में वराह की परस्पर धारणा भिन्न-भिन्न है।[2]

विष्णु का मत्स्यावतार :

ब्राह्मणों में ही विष्णु के वराह की तरह मत्स्य और कूर्म दो अवतार और भी हैं जिसमें मत्स्य का सम्बन्ध केवल भारतीय ही नहीं अपितु सभी प्राचीन आर्य एवम् सेमेतिक देशों के साहित्य से भी है। ईसाईयों के पवित्र ग्रन्थ बाइ-बिल एवम् इस्लाम के पवित्र ग्रन्थ कुआर्न शरीफ में भी इस कथा का उल्लेख किया

---

1. डॉ0 खोण्डा - आस्पेक्टस पृष्ठ संख्या-139.

2. डॉ0 कीथ - इन्डियन मैथोलोजी पृष्ठ संख्या-112.

शेष बचे। थोड़े समय पश्चात् मनु ने दधि, घी आदि से जल में ही हवन किया। एक साल बाद उस जल से एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम इडा था। इडा ने कहा-"हे पुरूष तुम मुझसे यज्ञ करो" मैं तुम्हें धन वैभव पशु व सन्तानादि प्रदान करूँगी। मनु ने उससे यज्ञ किया और इडा नामक कन्या से ही सारी प्रजा उत्पन्न हुई।

मनवे ह वै प्रात: अवनेग्यम उदकम आजह्नु: - । तस्या वनेनि जानस्य मत्स्य: पाणी आपेदे । स हास्मै वाचुमवाद 'विभ्रिहि मा, पारयिष्यामित्वा, इति । कस्मान्मा पारयिष्यसि? इति । औघ: इमा: सर्वा: प्रजा: निर्वोढा, ततस्त्वा पारयितास्मि । कथं ते भृतिरिति । स होवाच - यावद वै छुल्लका भवाम:, वहनी वै न: तावत् नष्ट्रा भवति । उत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति । कुम्भ्यां माग्रे विभरासि । स यदा तामतिवर्द्धै, अथ कर्षुं खात्वा तस्यां मा विभरासि । स यदा तामतिवर्द्धै अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अति नाष्ट्री भवितास्मि । शश्वद् ह झष आस । स हिज्येष्ठं वर्धते । अथइतिथीं समां तदौघ आगन्ता, तन्मा नावम् उपकल्प्य उपासासै । स औघ उत्थिते नावम आपद्यासै । तत्रस्त्वा पारयितास्मि । तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार । -- औघ: हता: सर्वा: प्रजा: निरूवाह । अथेह मनुरेवैक: परिशिशिषे ।

-शतपथ ब्राह्मण - 1-8-1-1-6.

इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित इस कथा के आधार पर हम यह मानते हैं कि प्रजापति ही मत्स्य के रूप में मनु के अञ्जलि में गये थे। और इसी प्रजापति से तादात्म्य रखने वाले विष्णु ने ही मत्स्य रूप में अवतार लेकर मानव कल्याण के लिए सृष्टि की थी, मनु केवल निमित्त मात्र थे, कर्त्ता स्वयम् विष्णु थे। विष्णु ने ही कन्या (इडा) के द्वारा प्रजा उत्पन्न कराया। अर्थात् यही विष्णु जो सर्वशक्तिमान् प्राकृतिक शक्ति है, भिन्न-भिन्न स्वरूपों में त्रस्त मानवता के लिए स्वयम् कष्ट उठाते हुए अवतार लेकर प्रकट होते हैं।[1] यही कारण है कि ब्राह्मण काल में विष्णु का देवताओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। अन्य सभी देवता विष्णु से अति गौण थे। जबकि वेदों में विष्णु का गौण स्थान था। ब्राह्मण काल तक आते-आते विष्णु यज्ञीय कर्मकाण्ड में सबके आराध्य देव हो गये।

विष्णु का कूर्मावतार :

विश्व की सर्वोत्तम शक्ति के कूर्म रूप का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में ही प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण के ही एक उद्धरण के अनुसार- यह जो कच्छप है, इसी का वेष बनाकर प्रजापति ने सृष्टि की रचना प्रारम्भ

---

1. डॉ० पाण्डुरङ्ग वामन काणे - धर्मशा० का इतिहास, पृष्ठ संख्या-395.

की थी, चूँकी उन्होंने इस रूप से सृष्टि की थी अत: इस रूप का नाम कूर्म पड़ा कूर्म ।कृ-करना + औणादिक मनिन्। कूर्म का ही दूसरा नाम काश्यप है ।[1] इसीलिए कहा जाता है कि समस्त प्रजा कूर्म की सन्तान है, विश्वरचना के पूर्व जब जलप्लावन हुआ तो सर्वत्र जल ही जल था । अत: विष्णु को जल में विचरण करने के लिये किसी जलीय प्राणी का रूप धारण करना पड़ा । ब्राह्मणों में कूर्म का अन्य सभी जलचरों से कहीं अधिक महत्त्व है । शतपथ ब्राह्मण में तो यहाँ तक कहा गया है कि कूर्म पृथिवी आदि तीनों लोकों का रस है । तथा तीनों लोकों की आत्मा है ।[2] इस प्रकार भगवान् विष्णु ने तीसरी बार कूर्म रूप में प्रकट होकर सृष्टि की रचना की थी । ब्राह्मण साहित्य में तो केवल इन्हीं अवतारों की कहानियाँ प्राप्त होती हैं । परवर्ती साहित्य विशेषकर पुराणों में तो नृसिंह आदि कई अवतारों की कथा उपलब्ध है । ब्राह्मणों में, इन अवतारों का कर्मकाण्डीय दर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है । यदि

---

1. स यत् कूर्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापति: प्रजा: असृजत । यद् सृजत अकरोत तत । यदकरोत तस्माद कूर्म: । काश्यपो वै कूर्म: । तस्मादाहु: सर्वा: प्रजा: काश्यप आदि । शतपथ ब्राह्मण - 7-5-1-5.

2. रसो वै कूर्म: । यो वै स एषां लोकानाम अप्सु प्रविद्धानां पराङ् रस: अभ्यक्षरत स एष: कूर्म: । यावानु वै रस: तावानात्मा । स एष इम एव लोक: । शतपथ ब्राह्मण - 7-5-1-1.

हम विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण कालिक यज्ञीय कर्म काण्डों में इन रूपों की रक्षार्थ हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए आह्वान किया गया है । तथा विष्णु के भी विभिन्न अवतारों में हविष्यान्न ग्रहण कर पृथिवी की रक्षा की है ।[1]

विष्णु के अवतार सम्बन्धी कहानियों की उपादेयता :

ब्राह्मण-साहित्य में विष्णु के अवतारवाद से सम्बन्धित जिन कहानियों का उल्लेख हुआ है उनका केवल परवर्ती भारतीय साहित्य ही नहीं अपितु पाश्-चात्य साहित्य की रचना में विशेष महत्त्व है । भारतीय साहित्य के तत्त्व जिज्ञासु के लिए भारतीय धर्म के अध्ययन के लिए इनकी अपरिहार्यता निश्चित है । भारतीयों के परवर्ती काल के सम्पूर्ण धार्मिक और दार्शनिक साहित्य के ज्ञान के दृष्टिकोण से ब्राह्मण ग्रन्थों में अवतारवाद का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है ।

श्री मद्भागवत, पुराण तथा महाभारत के अनेक उपाख्यानों के आधार स्तम्भ मे ही ब्राह्मण ग्रन्थ हैं । श्रीमद भागवत में अवतार सम्बन्धी आख्यानों

---

1. सोऽकामयत आभ्य: अदभ्य: अधि इमां प्रजनेययम इति । तां संक्लिश्य अप्सु प्राविध्यत तस्यै य पराङ् रस: अत्यक्षरत् । स कूर्म: अभवत ।
   शतपथ ब्राह्मण - 6-1-1-12.

की रचना में ब्राह्मण साहित्य का अत्यन्त महत्त्व है ।[1] परवर्ती काल की बहुत सी रचनाओं की आत्मा इन्हीं कथाओं में समायी हुई हैं । सङ्क्षेप में, यदि हम यह कहें कि ब्राह्मणों में यदि विष्णु के स्वरूप का सम्यक् वर्णन न होता तो केवल ब्राह्मण साहित्य ही अधूरे न रहते अपितु अनेक महाकाव्यों का प्रणयन ही न होता ।

विष्णु द्वारा पशुओं की प्राप्ति :

प्राचीन काल में भारतीयों की सम्पन्नता के मापदण्ड पशु भी हुआ करते थे । मानव अपने जीवन में ग्राम्य-पशुओं की सेवाकरके उनसे चर्म, दुग्ध आदि प्राप्त करता था जो उसके भोजन के मूलभूत अङ्ग हुआ करते थे । मानव का कल्याण करना विष्णु का सहज स्वभाव था । अत: विष्णु का पशुओं से सम्बन्ध भी स्वाभाविक था । तैत्तिरीय ब्राह्मण में पशुओं से सम्बन्धित विष्णु की एक कथा प्राप्त होती है । इस ब्राह्मण के अनुसार एक बार पशु मनुष्यों के पास से चले गये । इन्द्र, अग्नि, प्रजापति और विश्वेदेवा आदि पशुओं को

---

1. डॉ० पाण्डेय एवम् जोशी - वैदिक साहित्य की रूपरेखा पृष्ठ संख्या-155

डॉ० पाण्डु रङ्ग वामन काणे - धर्म शास्त्र का इतिहास पृष्ठ संख्या-397.

लेने गये, परन्तु वे लाने में असमर्थ रहे । लेकिन पराक्रमी विष्णु ने एक विशेष यज्ञीय कृत्य द्वारा उन पशुओं को प्राप्त किया[1] तथा वे पशु स्वच्छन्द रूप से मनुष्यों के पास रहने लगे । विष्णु के इस महान् कृत्य से केवल पशु और मनुष्य ही नहीं अपितु देवता भी उनके स्वरूप की प्रशंसा करने लगे ।[2]

'श्री' के साथ विष्णु :

ब्राह्मण साहित्य में 'श्री' समस्त विभूतियों के सम्मिलित तत्त्व का मानवीकरण है । इन ग्रन्थों में इस देवी का कभी भी स्वतन्त्र देवी के रूप में वर्णन नहीं प्राप्त होता है किन्तु परवर्ती रूप की छाया का वर्णन अवश्य मिलता है। इससे सम्बन्धित शतपथ ब्राह्मण में एक[3] छोटी सी यज्ञीय कथा है जो श्री के मनोरम मानवीकरण का चित्रण प्रस्तुत करती है । कथा इस प्रकार है-जब प्रजापति सृष्टि रचना करके श्रान्त हो चुके थे तो उनके शरीर से एक कन्या उत्पन्न हुई ।

---

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण - 20-3-2.

2. पञ्चविंश ब्राह्मण - 18-6-26.

3. शतपथ ब्राह्मण - 1. 2-1-9-4.
   2. 4-1-3-9.
   3. 10-1-4-14.
   4. 11-4-4-11.

उज्ज्वल तेज तथा लावण्य शरीर वाली यह कान्तिमती कन्या डर से काँप रही थी। जब देवताओं की दृष्टि उस देदीप्यमान ऐश्वर्य वाली कन्या पर पड़ी तो वे उसका वध करके ऐश्वर्य प्राप्त करने की कामना कर रहे थे। जब प्रजा-पति ने देखा कि ये देवगण कन्या का वध करके पाप को प्राप्त होंगे तो उन्होंने देवताओं को कन्या की हत्या करने से रोका और हत्या के बिना उससे ऐश्वर्य प्राप्त करने का निर्देश दिया।

प्रजापति के कथनानुसार सभी देवों ने उस देवी से ऐश्वर्य प्राप्त किया। अग्नि ने उससे अन्न, सोम ने राज्य, वरूण ने साम्राज्य, मित्र ने क्षत्रियत्व, इन्द्र ने बल प्राप्त किया।[1] पुन: प्रजापति ने उस देवी से स्वयम् को यज्ञ द्वारा प्राप्त करने का आदेश दिया और उस देवी ने यज्ञ के द्वारा पुन: उनके शरीर

---

1. प्रजापतिर्वै प्रजा: सृजमान: अतप्यत। तस्मात् श्रान्तात् श्री: उदक्रामत। सा दीप्यमाना भ्राजमाना लेलायन्ती अतिष्ठत्। तां देवा: अभ्याध्यायन। ते प्रजापतिं अब्रुवन इनाम इमामा इदमस्य ददामहै इति। स ह उवाच स्त्री वै एषा यत् श्री:, न वै स्त्रियं घ्नन्ति, उत् वा अस्या: जीवन्त्या: एव आददत इति। तस्या अग्नि: अन्नाद्यम आदत्त सोमो राज्यं वरूण: साम्राज्यम। शतपथ ब्राह्मण - 11-4-3-1-4.

को धारण किया । ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रजापति की विष्णु - रूप में कल्पना की गयी है । अतः प्रजापति को प्राप्त करने वाली 'श्री' दूसरे अर्थों में विष्णु को प्राप्त करती है । परवर्ती साहित्य विशेषकर पुराणों में इसी देवी की विष्णु की पत्नी (प्रिया) कमला या लक्ष्मी के रूप में कल्पना की गयी है । यही देवी क्षीर सागर में भगवान् विष्णु के साथ शयन करती हैं ।[1] परन्तु ब्राह्मणों में श्रीः केवल ऐश्वर्य सूचक हैं जो पराक्रमी विष्णु को यज्ञों से तादात्म्य होने के कारण प्राप्त होती है ।[2] यहाँ इसकी पत्नी के रूप में कल्पना नहीं हुई है । इस प्रकार सङ्क्षेप मेंहम यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण काल में श्रीः का स्वरूप भावात्मक अधिक था और संभवतः उनके स्वरूप का कोई भौतिक आधार नहीं है ।

डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार-"ब्राह्मण साहित्य के रहस्य का विश्लेषण करने से पता चलता है कि सर्वोत्तम अवस्था में विष्णु और उनकी शक्ति लक्ष्मी एक ही परमात्मा हैं ।[3] जो अभिन्न हैं, केवल सृष्टि के समय में भिन्न-भिन्न

---

1. हापकिन्स - एपिक मैथालोजी, सन्-1915 पृष्ठ संख्या-209.

2. डॉ० पाण्डु रङ्ग वामनकाने - धर्म शास्त्र का इतिहास पृष्ठ संख्या-396.

3. डॉ० राजबली पाण्डेय - हिन्दू धर्म कोश
पृष्ठ संख्या-565.

दृष्टिगोचर होते हैं ।"

वेदों से ब्राह्मणगत विष्णु का वैशिष्ट्य :

वैदिक संहिताओं में विष्णु की कल्पना केवल प्राकृतिक शक्ति के रूप में हुई है । परन्तु ब्राह्मण साहित्य में विष्णु को भगवान् के रूप में स्वीकार किया गया है । जो विष्णु वेदों में सामान्यकोटि के देव के रूप में इन्द्र के सहायक मात्र रह जाते हैं वहीं अपने बढ़ते हुए प्रभुत्व के कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रथम कोटि के देवता के रूप में पूजे जाते हैं । ब्राह्मण काल में विष्णु त्रस्त मानवता के उद्धार के लिए यदि कभी कूर्म और मत्स्य के रूप में अवतार धारण करते हैं तो कभी शूकर जैसे निम्नस्तरीय पशु के रूप में । तत्कालिक समाज की अवधारणा थी कि विष्णु मनोकामनापूर्ण करने वाले तथा प्राणियों की रक्षा करने वाले औदार्यशाली देव हैं । यज्ञों में भगवान् विष्णु को हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए आहूत किया जाता था और भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर हविष्य ग्रहण करते हुए यजमान और अध्वर्यु के आकांक्षा पूर्ण करते थे । समस्त प्राणी विष्णु को अपना आराध्य देव मानते थे और निखिल ब्राह्माण्ड आच्छादक एवम् सृष्टि-कर्त्ता विष्णु भी भक्तों के कल्याण के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते थे । यद्यपि यजुर्वेदकाल में भी कुछ यज्ञीय अवसरों पर मुख्य रूप से विष्णु का आह्वान

किया जाता था , परन्तु ब्राह्मण काल में इसका आधिक्य था । यही कारण है कि ब्राह्मण काल में विष्णु सर्वोच्च देव के रूप में प्रतिष्ठित थे ।

---------::0::---------

चतुर्थ अध्याय

आरण्यकों में विष्णु का स्वरूप

1. यज्ञों में विष्णु का स्वरूप ।
2. विष्णु का अवतारवाद ।
3. क. कूर्मावतार

   ख, नृसिंहावतार

3. पृथिवी उद्धारक के रूप में विष्णु ।
4. विष्णु की आदित्य रूप में कल्पना ।
5. ब्राह्मण से आरण्यकगत विष्णु का वैशिष्ट्य ।

आरण्यकों में विष्णु का स्वरूप

ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट आरण्यक ग्रन्थों का भी वैदिक वाङ्मय में विशिष्ट स्थान है, तैत्तिरीयारण्यक के अनुसार नगरों एवम् गावों से दूर अरण्य में जिनका अध्ययनाध्यापन होता था, उसे आरण्यक-साहित्य कहते हैं ।[1] आरण्यक को रहस्य ग्रन्थ भी कहा जाता है ।[2] यज्ञानुष्ठान के नियमों का विवेचन करना ही आरण्यकों का प्रधान विषय नहीं था, अपितु पुरोहित वर्ग की विचारधारा की दार्शनिकता के पुट की प्रतिष्ठा करना ही प्रधान विवेच्य था ।

आरण्यकों में यज्ञ का दार्शनिक रूप, आत्मविवेचन, ज्ञान, कर्म, उपासना का समन्वय, वर्णाश्रम धर्म, निष्काम कर्मयोग, प्राणविद्या, काल का पारमार्थिक रूप, ऋतुओं का वर्णन तथा साक्षात् यज्ञ रूप विष्णु का गुणगान हुआ है । वस्तुतः प्राणविद्या की महिमा इनमें विशेष रूप से गायी गयी है ।

---

1. (अ) अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यक मितीयते ।
   अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते ॥
   तैत्तिरीयारण्यक भाष्य श्लोक-6.

   (ब) ऐतरेयारण्यक - सायण भाष्य

2. बौधायन धर्मसूत्र - 2-8-3.

आरण्यकों में यागों का आध्यात्मिक एवम् तात्त्विक स्वरूप बताया गया है । "विष्णुर्वैयज्ञ:" द्वारा यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है । यज्ञ की व्याख्या विष्णु की व्याख्या है । अतएव "यज्ञो वै श्रेष्ठ-तमं कर्म" कहा गया है । यज्ञ: अर्थात् विष्णु को ही सृष्टि का नियन्ता माना गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद उपनिषदों के पूर्व विष्णु के स्वरूप का वर्णन आरण्यकों में हुआ है । परन्तु ब्राह्मणों की अपेक्षा आरण्यकों में विष्णु के स्वरूप के वर्णन की अल्पता है ।

फिर भी ऐतरेयारण्यक तथा तैत्तिरीयारण्यक में विष्णु के जिन-जिन स्वरूपों का उल्लेख प्राप्त होता है उन स्वरूपगत विशेषताओं का उल्लेख हमने इन आयामों में करने का प्रयास किया है ।

यज्ञों में विष्णु का स्वरूप :

यज्ञ से विष्णु का सृष्टि के उष: काल से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । इस तादात्म्य से जायमान अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्व आरण्यकों में प्राप्त होते हैं । आरण्यकों के अनुसार विष्णु ही एक ऐसे विशिष्ट देव हैं जो यज्ञ के महत्त्व के प्रतिष्ठापक तथा यज्ञ का फल देने वाले हैं । तैत्तिरीय आरण्यक में विष्णु और

यज्ञ के तादात्म्य तथा व्यपनशीलता से सम्बन्धित कई उद्धरण आये हैं ।[1] कुछ उद्धरण निम्नाङ्कित हैं ।

यज्ञ की कामना से देवगण एक सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञसत्र में उपस्थित हुए । उन्होंने कहा "जो भी यज्ञ हम लोगों को सर्वप्रथम प्राप्त होगा, वह समान रूप से हम सबका होगा"; कुरुक्षेत्र उसकी वेदी थी, खाण्डव उसका दक्षिणार्ध था । उनके पास वैष्णव यज्ञ आया । इस यज्ञ की उसने इच्छा की, और इसके साथ चला गया । देवों ने यज्ञ की इच्छा से उसका पीछा किया । जब उसका इस प्रकार से पीछा किया जा रहा था तब उसके बायें (हाथ) से एक धनुष और दायें (हाथ) से बाण उत्पन्न हुआ । इसीलिए धनुष और बाणों को पुण्यजन्मा कहते हैं । क्योंकि इनकी यज्ञ से उत्पत्ति हुई है ।[2]

---

1. जे0 म्यूर - मूल संस्कृत उद्धरण - अनुवाद
दैवा वा सत्रम् आसत् ऋद्धिपरिमितं यशस्कामम् । ते अब्रुवन् "यन नः प्रथम यश ऋछात् सर्वेषां नस् तद् सहासद्" इति । तेषां कुरुक्षेत्रं वेदिर् आसीत् । तस्यै खाण्डवो दक्षिणार्ध आसीत् । तैत्तिरीयारण्यक - 5-1-1.

2. तेषां मखम् वैष्णवम् यश आछर्त्त । तद् न्यकामयत् तेन अप्राकमात, तै देवा अन्वायन् यशोऽवरूरुत्समानः । तस्य अन्वागतस्य सव्याद् धनुर् अजायत् दक्षिणा द इषवः । तस्माद इषुधन्विम् पुण्य जन्म तज्ञ जन्म हि ।
तैत्तिरीयारण्यक - 5-1-2.

बहुत छोटे हुए भी वे ॥देवगण॥ उसे जो केवल अकेला था, पराभूत नहीं कर सके । अतः बिना धनुष बाण वाले अनेक व्यक्ति भी धनुष बाण वाले एक वीर को पराभूत नहीं कर सके । उसने हँसकर कहा यद्यपि ये अनेक हैं, तथापि मुझ अकेले को नहीं पकड़ पा रहे हैं । जब वह देव मुस्कुरा रहा था तो उससे तेज निकल रहा था । इसे देवों ने औषधियों पर रख दिया, तब वे श्यामक हो गये । क्योंकि वे मुस्कराने वाले हैं ।[1]

इसीलिए इसका यह नाम है । इसलिए जो व्यक्ति दीक्षित हो गया, उसे कम मुस्कराना चाहिए । जिससे वह अपने तेज को धारण किए रहे । वह अपने धनुष पर टिक कर खड़ा हुआ । चीटियों ने देवों से कहा 'हमें एक वर दो' उसके बाद उसे हम पराभूत करेंगे । हम जहाँ भी खोदें जल का उद्घाटन करें । इसीलिए चीटियाँ जहाँ भी खोदती हैं उन्हें जल प्राप्त होता है ।[2]

---

1. तम् एकम सन्तम् बहवो न अभ्यधृष्णुवन्ति । तस्मात एकं इषुधनवं वीरं बहवो अनिषु धन्वा न अभिधृष्णुवन्ति । -- श्यामकः वै नाम एते ।

तैत्तिरीयारण्यक -5-1-3.

2. तत्श्यामकानां स्ययाकत्वम् । तस्माद् दीक्षितेन् अपिगृह्य स्येतव्यं तेजसो धृत्ये । -- तस्माद उदीका इति यत्र क च खनन्ति तद् अपो भितृन्दन्ति ।

तैत्तिरीयारण्यक - 5-1-4.

क्योंकि इन्होंने यही वर माँगा था । उन सबने उनकी (विष्णु की) प्रत्यन्चा को कुतर डाला । उसके धनुष के दोनों किनारें अलग हो गये । इससे उसका सर कटकर ऊपर उछल पड़ा । वह आकाश और पृथिवी में भ्रमण करता रहा । उसके घ्राँ की ध्वनि से गिरने से ही धर्म का नामकरण हुआ ।[1]

उनके द्वारा उसके सम्भरण से सम्राट् नाम हुआ । जब वह भूमि पर पड़ा था तब देवों ने उसे तीन भागों में विभक्त किया । अग्नि ने प्रातःसवन किया । इन्द्र ने माध्यन्दिन सवन और विश्वेदेवा ने तृतीय सवन लिया । इस शीर्ष विहीन यज्ञ में यजन करते हुए उन लोगों ने न तो कोई आशीर्वाद प्राप्त किया, न ही स्वर्ग पर विजय प्राप्त किया ।[2]

देवों ने आश्विनों से कहा-तुम दोनों भिषज् हो, इस यज्ञ के लिए सिर को पुनः रखो । उन लोगों ने (आश्विनों ने) कहा-"हमें एक वर दो" । हमें भी यह हमारा ग्रह (सोम-हवि) प्राप्त हो । फलस्वरूप देवों ने इस हवि को आश्विनों के लिए प्राप्त किया ।[3]

---

1. वरवृत्तम् हय आसाम् । तस्य ज्याम् अप्यादन् । तस्य धनुर् विप्रवमाणं शिर उद वर्त्तयत् । तद् द्यावापृथिवी अनुपार्त्तत -- महतो वीर्यम् अपप्तदे इति तद् महवीरस्य महावीरत्वम् ॥ तैत्तिरीयारण्यक - 5-1-5.
2. यद् अस्याः सम्भरंश तत् सम्राजः । सम्राटत्वम् । -- ते देवा आश्विनाव अब्रुवन् । तैत्तिरीयारण्यक - 5-1-6.
3. जे० म्यूर - ओरिजनल संस्कृत टैक्स्ट मूल संस्कृत उद्धरण

आश्विनों ने यज्ञ के सर को पुनः लगा दिया, जो यह प्रवर्ग्य है। इस शीर्षयुक्त यज्ञ से यजन करते हुए उन लोगों ने आशीर्वाद प्राप्त किया। स्वर्ग को प्राप्त किया। जब व्यक्ति प्रवर्ग्य को फैलाता है, तब वह यज्ञ के शीर्ष को प्रतिष्ठित करता है। शीर्षयुक्त यज्ञ में यजन करते हुए मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है, और स्वर्ग को जीत लेता है। इसीलिए यह प्रवर्ग्य मुख्यतः आश्विनों के हवि से सम्बद्ध होता है।[1] इस कथा के अध्ययन के पश्चात् हमारा मत है कि-इसमें दो बातें अति महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रथमतः इस आरण्यक में एक बात अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा ध्यान देने योग्य है कि इसके पूर्व ब्राह्मणों में इस सम्बन्ध में आश्विनों का उल्लेख नहीं है जबकि इस आरण्यक में मख के सिर के नष्ट हो जाने पर सभी देवता वैद्य आश्विनों से सर को जोड़ने के लिए निवेदन करते हैं। आश्विन प्रवर्ग्य में एक ग्रह प्राप्त करके मख का सिर धड़ से जोड़ देते हैं।

---

1. भिषजौ वै स्थः इदं यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्तं यत् प्रवर्ग्यः। तेन सशीर्ष्णा यज्ञेन यजमानाः न आशिषो अवारूधन्त न सुवर्ग लोकम् अजयन्। --तस्माद् एष आश्विन प्रवया इव यत् प्रवर्ग्यः। तैत्तिरीयारण्यक - 1-7.

अनुवाद - जे० म्यूर - मूल संस्कृत उद्धरण

तैत्तिरीयारण्यक की यह कथा विशुद्ध यज्ञीय उद्भावना है । यज्ञ परमैश्व-र्यशाली है । यहाँ पर यज्ञ को शुद्ध चैतन्य स्वरूप प्राणी के रूप में चित्रित करते हुए तत्कालिक समाज को दीक्षित होकर सैद्धान्तिक रूप में जीवनयापन करने का उपदेश दिया गया है । मनुष्य इस कथा के ज्ञान से तथा यज्ञ के फल से पुण्य जन्मा भी हो सकता है ।

विष्णु का अवतारवाद :

आरण्यक काल के धार्मिकों ने विष्णु को जगत् एवम् सृष्टि की रक्षा के लिए अवतार रूप में कई बार इस संसार में देखा । विष्णु विभिन्न रूपों में अवतार धारण करके सृष्टि की उत्पत्ति, उसकी रक्षा तथा अन्त में अपने में लीन कर लेते हैं । इन ग्रन्थों में विष्णु के जिन अवतारों का उल्लेख प्राप्त होता है उनका क्रमशः विवेचन करने का प्रयास मैं कर रहा हूँ । विष्णु का सबसे महत्त्वपूर्ण अवतार कूर्म है । आरण्यकों की सृष्टि सम्बन्धी दार्शनिक विचिकित्साओं में कूर्म की कितनी उपादेयता है, यह तैत्तिरीयारण्यक के इस उद्धरण से और स्पष्ट हो जायेगा । यहाँ पर प्रजापति के आदि कारण कूर्म का छोटा सा संवाद है । तैत्तिरीयारण्यक की कथा इस प्रकार है-सृष्टि के लिए घोर तपस्या करने के उपरान्त प्रजापति के शरीर का रस निकालकर जल में प्रविष्ट होकर एक कूर्म का रूप धारण कर लेता है । प्रजापति कूर्म से कहते हैं ।

तुम मेरी त्वचा एवम् मांस से उत्पन्न हुए हो । कूर्म इसका प्रतिवाद करता है और कहता है कि मैं तुमसे भी पहले था । (पूर्वम् आसम्) इसी से उसे पुरूष भी कहते हैं । कूर्म वही आदि पुरूष है जिसे सहस्र-शीर्षा, सहस्राक्ष और सहस्र-पात् कहा गया है । प्रजापति कूर्म के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उससे सृष्टि के लिए कहते हैं और तब कूर्म सृष्टि करता है ।[1]

इस कथा के आधार पर यदि प्रजापति को यज्ञ और याज्ञिक क्रियाओं का प्रधान कर्त्ता माना जाय तो उनके ही शरीर के सारभूत तत्त्व को संसार का प्रथम कर्त्ता या दिव्यपुरूष मानना उचित ही है । यही कारण है कि सृष्टि के प्रारम्भिकावस्था में इनकी आदि संज्ञा नारायण थी । मेरी विचार से यही कूर्म ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में उल्लिखित जगत् के आदि कारण पुरूष का दूसरा रूप है ।[2] इससे सम्बन्धित सायणाचार्य ने भी इसकी एक वृहत् व्याख्या की है । 'पहले रहने के कारण पुरूष को पुरूष कहा जाता है' । वस्तुत: कूर्म का पुरूष से

---

1. यो रस: स: अपाम् इति । अन्तरत: कूर्मभूतं सर्पन्तं तमब्रवीत । मम वै त्वङ्मासासमभूत् नेत्यब्रवीत । पूर्वमेवाहम इह आसम इति । तत्पुरूषस्य पुरूषत्वम् । सहस्त्र शीर्षा पुरूष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात । भूत्वोदतिष्ठत । तमब्रवीत त्वं वै पूर्वं समभू: त्वमिदं पूर्वं कुरूष्व इति ।

तैत्तिरीयारण्यक - 23-3-4.

2. ऋग्वेद - 10-90.

तादात्म्य विष्णु से कुछ सम्बन्ध जोड़ता है ।[1] मैकडानल और कीथ ने भी इस सम्बन्ध को स्वीकार किया है ।[2]

नृसिंहावतार :

सम्पूर्ण वैदिक वाड्मय में तैत्तिरीयारण्यक एक ऐसा ग्रन्थ है जिसने सर्वप्रथम भगवान् विष्णु की नृसिंहावतार का उल्लेख किया है । इसके बीज प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में नहीं प्राप्त होते हैं । सर्वप्रथम एक गायत्री जो नृसिंह अवतार से ही सम्बन्धित है, तैत्तिरीयारण्यक में प्राप्त होती है ।[3] यद्यपि यह गायात्री स्वराङ्कित है फिर भी इसकी प्राचीनता में कुछ सन्देह है । इस विषय में सन्देह होने के दो कारण मुख्य हैं ।

---

1. अहं तु सर्वगतनित्य चैतन्यस्वरूपत्वात् पूर्वमे वेहास्मिन् स्थाने स्थितोऽस्मि ।
सायणाचार्य - सायण भाष्य

2. (क) मैकडानल - जनरल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी-भाग-27.
पृष्ठ संख्या - 166-168. सन्-1897.

(ख) कीथ - रि०ए०फि० भाग-1 पृष्ठ संख्या - 122.

3. वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि ।
तन्नो नारसिंह: प्रचोदयात् ॥ तैत्तिरीयारण्यक 10-1-7.

प्रथम तो तैत्तिरीयारण्यक का नारायणोपनिषद् संज्ञक दशम प्रपाठक सायणाचार्यादि द्वारा खिल भाग माना गया है ।[1] द्वितीय कारण इस उपनिषद् के दो भिन्न-भिन्न संस्करण प्राप्त होते हैं । सायण ने जिस गायत्री पर भाष्य लिखा है उसमें इस गायत्री का उल्लेख नहीं है ।[2]

तैत्तिरीयारण्यक की इस गायत्री में नृसिंह को जगत् का आदिकारण एवम् परमतत्व मानकर उपासना की गयी है । नृसिंह शब्द यहाँ गूढ़ आध्यात्मिक भावों का प्रतिनिधि है । तैत्तिरीयारण्यक की गायत्री अपेक्षाकृत अर्वाचीन होने पर भी रामायण और महाभारत से प्राचीन है । यही कारण है कि तैत्तिरीयारण्यक का आध्यात्मिक शब्द महाभारत तक विस्तृत होकर लोकापवाद का विषय बन गया है । उल्लेखनीय है कि आरण्यकों में न तो कहीं हिरण्यकशिपु का उल्लेख है न हि कहीं नृसिंह के आधे मानव की और न ही आधे सिंह का वर्णन

---

1. यथा वृहदारण्यके सप्तमाष्ठाध्यायौ खिलकाण्डेन् आचार्यैरूदाहृतौ तथेयं नारायणीयाख्या यज्ञिक्युपनिषद्ऽपि खिलकाण्डरूपा तल्लक्षणोपेतत्वात् ।
   वृहदारण्यक - 1-7.

2. कीथ - वै० मै०
   पृष्ठ संख्या - 80.

हुआ है। तैत्तिरीयारण्यक में सर्वप्रथम इस गायत्री की स्निग्ध परिकल्पना विष्णु के एक और पवित्र अवतार की सत्ता को प्रमाणित करती है। प्राकृतिक शक्ति विष्णु ने नृसिंह रूप में आक्रान्त मानवता की रक्षा तथा प्राणियों का उद्धार किया है।

पृथ्वी उद्धारक के रूप में विष्णु :

प्रलयकाल में जब सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो गयी थी, सृष्टि का पूर्णतया विनाश हो गया था, चतुर्दिक जल ही जल दिखाई पड़ रहा था, तो उस विषम बेला में पृथ्वी के उद्धार के लिए दयालु विष्णु ने वराह के रूप में अवतार लिया। प्रकट होकर जल के अन्दर से पृथ्वी को निकाल कर बाहर किया। इस प्रकार विष्णु ने पुन: सृष्टि रचना प्रारम्भ कर दी। तैत्तिरीयारण्यक में पृथ्वी उद्धरण की कथा का उल्लेख प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वी का उद्धार करने वाले इस वराह के हजार भुजाएँ थी। वराह काले रङ्ग का था।[1] परवर्ती साहित्य में यही कथा विस्तार के साथ आई है। महानारायणीय उपनिषद् और विशिष्ट पुराण-पद्मपुराण में इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

---

1. उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
   नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारिणी सुव्रते ॥ तैत्तिरीयारण्यक-1-3-5.

2. (क) महानारायणी उपनिषद् -
   (ख) पद्म पुराण - सृष्टिखण्ड (20 - पृष्ठ संख्या - 145.)

वस्तुतः वराह जीवन के सारतत्त्व को ग्रहण करके उसकी रक्षा करने वाला शक्तिशाली जीव है। पृथिवी से अन्न उत्पन्न करने में उसका भी हाथ है। और इस प्रकार उर्वराशक्ति से उसका सम्बन्ध है। साथ ही सरलता से वह अपनी निधि किसी को नहीं देता। यही नहीं, विष्णु एक ऐसा उदार देवता है जो त्रस्त मानवता के कल्याण के लिए शूकर के रूप में अवतार ग्रहण कर सृष्टि रचना करता है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में ऐसा औदार्य शाली देव कोई नहीं है जो पृथिवी के उद्धार के लिए शूकर जैसे निकृष्ट प्राणी के रूप में अवतार ले। अतः तैत्तिरीयारण्यक की यह कथा विष्णु की औदार्य एवम् सहिष्णुता को प्रमाणित करती हुई श्रेष्ठ देव के रूप में विभूषित करती है।

विष्णु की आदित्य के रूप में कल्पना :

बृहदारण्यक में विष्णु की कल्पना आदित्य के रूप में की गयी है। विष्णु भी द्वादश आदित्यों में एक आदित्य है जो आगे चलकर प्राणियों की रक्षा करते हैं। बृहदारण्यक में एक उद्धरण आदित्यों से सम्बन्धित है, जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि विष्णु भी एक आदित्य हैं। आदित्य कितने हैं? एक वर्ष में बारह मास होते हैं, यही आदित्य हैं। क्योंकि यही सब इनका आदान करते हुए चलते हैं। अतः इन्हें आदित्य कहते हैं। वैदिक सूक्तों में तो आदित्यों

की संख्या सात बताई गयी है ।[1] कहीं आठ का भी उल्लेख प्राप्त होता है । एक सूक्त में तो छह देवताओं को अद्वितीय पुत्र के रूप में बताया गया है और उसमें विष्णु का नामोल्लेख नहीं है ।

डॉ० जे० म्यूर के द्वारा विष्णु को सदैव एक आदित्य बताया गया है । विष्णु को द्वादश आदित्यों में से श्रेष्ठ बताया गया है ।[2] वाटलिङ्ग और राथ के अनुसार तैत्तिरीयारण्यक एवम् शतपथ ब्राह्मण में आदित्यों के रूप में विष्णु की कल्पना की गयी है।[3] सूर्य से सम्बन्धित होने के कारण विष्णु वैदिक काल में आदित्यगण में सम्मिलित थे । धीरे-धीरे विष्णु के स्वरूप का निरन्तर उत्कर्ष होता गया । और आरण्यकों तक आते-आते जगत् के स्रष्टा एवम् नियन्ता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा हो गयी । जन्म-मरण से रहित होने के कारण विष्णु की

---

1. कद् में आदित्या । द्वादश मासा: । संवत्सरस्य एते आदित्या: ।
   एते हि इदं सर्वम् आददाना यन्ति । ते यद् इदं सर्वम् आददाना यन्ति
   तस्माद् आदित्या इति । वृहदारण्यक -
2. जे० म्यूर - मूल संस्कृत उद्धरण,
   पृष्ठ संख्या - 110.
3. जे० म्यूर - मूल संस्कृत उद्धरण,
   पृष्ठ संख्या - 112.

किसी माता से उत्पत्ति कल्पित करना असङ्गत होगा । अतः विष्णु वैदिक काल के अन्त तक आद्यन्त हीन कालातीत शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो गये तथा उनका जो स्थान खाली हुआ उसे उनके वामनावतार ने ग्रहण कर लिया ।

वृहद्देवता एवम् निरूक्त के अनुसार विष्णु की आदित्यगण में गणना किये जाने से स्पष्ट है कि विष्णु का मूल रूप सूर्य से किसी न किसी प्रकार से अवश्य सम्बद्ध है । विष्णु एक ऐसे विशिष्ट देव हैं जो कि विभिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकाशित होते हैं । उनका तादात्म्य कभी आदित्य से तो कभी प्रजापति से व कभी यज्ञ से है । अतः विष्णु यदि महतो महीयान् हैं तो अणोरणीयान् भी हैं । तैत्तिरीयारण्यक में इस देव को आदित्यगण में से एक मानना इसके स्निग्धता एवम् कृपालुता की पराकाष्ठा को प्रमाणित करना है ।

ब्राह्मण से आरण्यकगत विष्णु का वैशिष्ट्य :

आरण्यक साहित्य में विष्णु के स्वरूप के वर्णन की संक्षिप्तता होने पर भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । यहाँ विष्णु का नवीन वैशिष्ट्य प्राप्त होता है , जिनका ब्राह्मणों में सर्वथा अभाव है । सर्वप्रथम तैत्तिरीयारण्यक में विष्णु के नृसिंहावतार की कल्पना गायत्री छन्द के रूप में हुई है । इसमें विनाश के समय प्राणि मात्र के रक्षा के लिए भगवान् विष्णु ने नृसिंह का रूप धारण किया था ।

इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम विष्णु को अदिति के पुत्रों या द्वादश अदिति के रूप में प्रमाणित किया गया है ।

आरण्यक ग्रन्थों का विवेच्य विषय प्राणिविद्या है । अतः अधिकांशतः प्राणि विद्या का विवेचन होने के कारण विष्णु के स्वरूप का निरूपण ब्राह्मण साहित्य की अपेक्षा कम हुआ है । किन्तु विष्णु के जिन उदात्त एवं मौलिक गुणों का सुन्दर रूप से विवेचन हुआ है । वह समस्त वैदिक साहित्य में अद्वितीय एवं अनुपम है । अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आरण्यक ग्रन्थों में विष्णु के स्वरूप का आध्यात्मिक एवं सूक्ष्म चित्रण हुआ है ।

---------::0::---------

पंचम अध्याय

उपनिषदों में विष्णु का स्वरूप

1. विष्णु का परमपद ।
2. गर्भाधान के समय विष्णु का आह्वान ।
3. नारायण के रूप में विष्णु ।

उपनिषदों में विष्णु का स्वरूप

उपनिषद् ग्रन्थ भारतीय अध्यात्मचिन्तन के मुख्य स्रोत हैं । ये अध्यात्म चिन्तकों के लिए सम्बल प्रदान करने वाली अक्षय निधि है । ब्रह्म विद्या का प्रतिपादन वेद के जिस उत्युच्च शिरोभाग में हुआ है, उसी का नाम उपनिषद् है ।

भारतीय संस्कृति की विभिन्न विचार पद्धतियाँ उपनिषद् साहित्य की ज्ञान धारा के पावनपीयूष को पाकर ही पल्लवित हुई हैं । उपनिषदों की गम्भीरता, तात्त्विकता एवम् मधुरता पर केवल वैदिक धर्मावलम्बी ही नहीं वरन् न जाने कितने विदेशी व विधर्मी भी मुग्ध हो गये है । मंसूर, शरमद, फैजी, बुल्लशाह एवम् मैक्समूलर, शोपेनहार और विन्टर निट्ज आदि ने इस्लाम एवम् मसीह धर्मावलम्बी होने पर भी औपिनषद् साहित्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है । इन विद्वानों ने उपनिषदों को ही अपना सर्वस्व माना है । दाराशिकोह 1640 ई0 में अपनी कश्मीर यात्रा में उपनिषदों के तात्त्विक ज्ञान को सुनकर इनकी ओर आकृष्ट हुआ और काशी के पण्डितों को बुलाकर उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया । अत: यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि ये पवित्र ग्रन्थ विश्वमनीषियों के प्रेरणास्रोत रहे हैं ।

उपनिषदों में शाश्वत सत्य के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है । वह चिरन्तन सत्य है सब कुछ ब्रह्म है । मानव जीवन और विश्वसृष्टि की समस्याओं पर चिन्तन करते हुए मनीषियों ने ब्रह्म को सत्-चित् और आनन्द-स्वरूप कहा है । उपनिषदों की शिक्षा सद्वाद की है । इन ग्रन्थों का लक्ष्य अक्षर प्राप्ति है । अक्षर ही ब्रह्म है । वह द्रष्टा है, पर देखा नहीं जा सकता, वह विज्ञाता है, पर बुद्धि द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता । ब्रह्म कण-कण में व्याप्त है । उपनिषदें आत्मा एवम् ब्रह्म में एकान्त प्रतिपादन के साथ शरीर से उसका पार्थक्य प्रतिपादित करती हैं । इनमें आत्मा को अखण्ड, अद्वितीय एवम् सर्वव्यापक माना गया है । उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म वह दिव्यशक्ति है जो समस्त जीवन का स्रोत है और अन्तिमावस्था में प्रत्येक वस्तु उसी में अन्तर्भूत हो जाती है ।

उपनिषदों के अनुसार जीवन का परम लक्ष्य 'ब्रह्म' के साथ एकता स्थापित करना है, जो अज्ञान के नष्ट होने पर ही सम्भव है । जिसने ब्रह्म और आत्मा की एकता को जान लिया है, वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है । जो सत्य ज्ञान को जान लेता है, वह 'पद्मपत्रमिवाम्भसः' की तरह कर्म से दूर रहता है । समस्त औपनिषद् साहित्य में निर्दिष्ट है कि ज्ञान केवल

शक्ति नहीं है, अपितु मुक्ति का मार्ग है । ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही इन्द्र सौ वर्षों तक प्रजापति के शिष्य रहते हैं तथा इसी आत्मज्ञान के लिए राजा हजारों गायें एवम् सुवर्ण दान करते हैं ।

उपनिषदों के अनुसार कर्मफलवाद का सिद्धान्त यथार्थ है । मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार फल को प्राप्त करता है । जन्म-जन्मान्तर के कठिन साधना के अनुष्ठान से ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है । मुक्ति प्राप्ति के लिए कर्म-सन्यास आवश्यक है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वेदों में जहाँ पुरूषार्थ की भावना प्रबल है, वहीं उपनिषदों में निराशावाद के सिद्धान्त भी जन्म लेते हैं । यदि उपनिषदों में प्रतिष्ठापित आत्मा व ब्रह्म आत्मज्ञान का प्रतिपादक है तो अग्नि, विष्णु, पूषन्, वरूण, यम आदि नाम उसी के विशेषण हैं । यह स्वयं सिद्ध हो जाता है, क्योंकि वेदों में ज्ञानी लोग एक ही परमतत्त्व का अनेक रूपों में वर्णन करते हैं । ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार उसी एक को इन्द्र, मित्र, वरूण, अग्नि, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा आदि नामों से अभिहित किया गया है ।[1]

---

1. इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान् ।
   एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
   ऋग्वेद - 1-164-46.

यजुर्वेद में भी एक मन्त्र में कहा गया है कि वही आदित्य है, वही वायु है, वही विष्णु है, वही शुक्र, आप् तथा ब्रह्मा है । वही प्रजापति है ।[1]

उक्त तथ्य अथर्ववेद की एक ऋचा से और स्पष्ट हो जाता है कि वह आत्मा हम सबका पिता है, जनक और बन्धु है, वह सब भुवनों और स्थानों को यथावत् जानता है, वह सब देवताओं के नाम अपने लिए धारण करता है और वह केवल एक ही है ।[2] इन तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि विष्णु और ब्रह्म दोनों एक ही परमतत्त्व के दो रूप हैं । वस्तुतः विष्णु ही ब्रह्म हैं और ब्रह्म ही विष्णु है । अतः उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म का स्वरूप परोक्ष रूप में विष्णु का स्वरूप है ।

प्रमाणित एकादशोपनिषद् में विष्णु के स्वरूप का वर्णन प्रत्यक्ष रूप में केवल वृहदारण्यकोपनिषद् में आया है । परवर्ती मुक्तिकोपनिषद् में उपनिषदों

---

1. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु विष्णुः ।
   तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः ॥
   - यजुर्वेद - 32-1.

2. स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
   यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥
   - अथर्ववेद - 2-1-3.

की संख्या 10 बतायी गयी है ।[1] इन उपनिषदों में नारायणोपनिषद् पूर्ण - रूपेण विष्णु को समर्पित है । जिसमें विष्णु के उत्तम स्वरूप एवम् ओजस्वी कार्यों का प्रतिपादन किया गया है । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य उपनिषदों में भी भगवान् विष्णु के स्निग्ध एवम् निर्मल गुणों का निरूपण किया गया है ।

विष्णु का परमपद :

विष्णु का परमपद आकाश में चक्षु की भांति विद्यमान है, जिसे ज्ञानी व्यक्ति ही अपने अलौकिक चक्षुओं से देख पाते हैं । यहाँ पर अमृत का भण्डार है । भगवान् विष्णु सदैव इस मधवुत्स की रक्षा किया करते हैं । औपनिषद् साहित्य में मनुष्य को वैराग्य धारण करके इस परमस्थान को प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है । मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि का सदुपयोग करें, सांसारिक विषयभोगजन्य क्षणिक सुखों की वास्तविकता को समझ- कर उससे उदासीन हो जाय । केवल शरीर निर्वाह के लिए अपेक्षित कर्मों को निष्काम भाव से करता हुआ विष्णु में अहर्निश अनुरक्त रहे और विष्णु का साक्षा- त्कार करके उस परमपद को प्राप्त कर लें, जहाँ से वापस आकर इस संसार के

---

1. ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य तित्तिर: ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं वृहदारण्यकं तथा ।। मुक्तिकोपनिषद्-1-30.

बन्धन चक्र में संयुक्त न होना पड़े ।

कठोपनिषद् में जीवात्मा के उत्कर्ष की तुलना यात्रा से की गयी है, जिसके अन्त में विष्णु का परमपद प्राप्त होता है । यही अन्तिम लक्ष्य तथा शाश्वत आनन्द का आलय है । कठोपनिषद् के कुछ मन्त्रों में इसके महत्त्व को निरूपित किया गया है ।

जो सदा विवेक रहित, असावधान मन वाला तथा अपवित्र रहता है, वह उस परमपद को नहीं प्राप्त करता अपितु संसार-आवागमन या जन्म-मृत्यु परम्परा को प्राप्त करता है ।[1]

जो सदा विवेकयुक्त, सावधान मन वाला तथा पवित्र रहता है, वह उस परमपद (श्रेष्ठ स्थान) को प्राप्त करता है जहाँ से फिर नहीं उत्पन्न होता है । अर्थात् जन्म-मृत्यु (आवागमन) के बन्धन से मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त करता है ।[2]

---

1. यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः ।
   न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ कठोपनिषद्-1-3-7.

2. यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः ।
   स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ कठोपनिषद्-1-3-8.

जो विवेकयुक्त बुद्धिरूपी सारथि से युक्त और मनरूपी लगाम (इन्द्रिय रूपी अश्व) को वश में रखने वाला होता है, वह मनुष्य संसार मार्ग के पार में स्थित परमात्मा के उस परमपद को प्राप्त करे ।[1]

मनुष्य जिस क्षण से जन्म लेता है, वह स्वार्थ एवम् मोहमाया के बन्धन से बँध जाता है । उसे कभी भोजन की चिन्ता, तो कभी वस्त्राभूषण की, तो कभी भव्यप्रसाद की चिन्ता रहती है । जीवन के अन्तिम क्षणों में भी वह माया के पाश से मुक्त नहीं हो पाता और पुनः उसी जीवन-मरण के घोर चक्र में निमग्न हो जाता है । यही कारण है कि अनेक योनियों में जन्म लेकर भी मनुष्य उस श्रेष्ठ पद विष्णुधाम को नहीं प्राप्त कर पाता है ।

इन मन्त्रों से यह तथ्य पूर्णतया स्पष्ट है कि यह अनित्य तथापि अतिदुर्लभ मानव शरीर जिस जीवात्मा को अपने अशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त हो गया है, उसे अपना सौभाग्य समझकर अपने जीवन को मानव जीवन की

---

1. विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
   सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परं पदम् ॥
   - कठोपनिषद् - 1-3-9.

लक्ष्यपूर्ति हेतु लगा देना चाहिए । अपने जीवन के इस अमूल्य समय को यदि पशुओं की तरह सांसारिक भोग विलास के आस्वादन में ही नष्ट कर दिया गया तो उसका परिणाम यह होगा कि उस व्यक्ति को आत्म साक्षात्कार नहीं होगा, जिसके अभाव में विष्णु के परमपद से वञ्चित रहना पड़ेगा ।

श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए पदमपद के महत्त्व को बताया है ।

जिसका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएं पूर्णरूपेण नष्ट हो गयी हैं-वे सुख-दु:ख नामक द्वन्दों से विमुक्त ज्ञानीजन उस परमपद को प्राप्त होते हैं ।[1]

अंहता ममता और वासना रूप अतिदृढ़ मूलों वाले संसार रूप पीपल के

---

1. निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
   अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा: ।
   द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुखदु:ख संज्ञै
   र्गच्छन्त्यमूढा: पदमव्ययं तत् ॥
   - श्रीमद्भगवद्गीता - 15-5.

वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर[1] उस परमपद रूप परमेश्वर (विष्णु) को भली-भाँति खोजना चाहिए, जिसमें गये हुए पुरूष पुन: लौटकर संसार में नहीं आते और जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार-वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी आदि पुरूष के शरण में हूँ-इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वर (विष्णु) का मनन और निदिध्यासन करना चाहिए ।[2]

जिस परमपद को पाकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयं-प्रकाश परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और अग्नि ही । वही मेरा परमधाम है ।[3]

गर्भाधान के समय विष्णु का आह्वान :

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी है तथा समाज का महत्त्वपूर्ण अवयव है । समाज को उच्चतर अथवा निकृष्टतर बनाने में उसका विशिष्ट योगदान है ।

---

1. अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
   मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ श्रीमद् भगवद् गीता - 15-3.

2. तत: पदम् तत्परिमार्गितव्यं
   यस्मिनगता न निवर्तन्ति भूय: ।
   तमेव चाद्यं पुरूषं प्रपद्ये-
   यत: प्रवृत्ति: प्रसृता पुराणी ॥ श्रीमद् भगवद् गीता - 15-4.

3. न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्कने न पावक: ।
   यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम् परं मम् ॥ श्रीमद् भगवद् गीता-15-6.

अतएव वैदिक मनीषियों ने मनुष्य को उसके जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के पश्चात् तक संस्कृत करते रहने की योजना बनायी, ताकि उसके स्खलन की सम्भावना कम से कम रहे । गर्भाधान भी इसका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है ।

'गर्भः सन्धार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधान-मित्यनुगतार्थं कर्म नाम धेयम् ।'[1]

वीरमित्रोदयकार के अनुसार-स्त्री द्वारा पुरूषबीज का धारण गर्भलम्भन (गर्भाधान) है ।[2]

स्त्री-पुरूष का पारस्परिक आकर्षण तथा उनका शारीरिक सम्बन्ध-स्थापन एक जैवकीय आवश्यकता है । सहवास सर्वथा एकान्तसेव्य तथा वैयक्तिक प्रक्रिया है ।

आचार्य सुश्रुत के अनुसार-जैसे ऋतु, क्षेत्र, अम्बु और बीज के संयोग से

---

1. पूर्व मीमांसा - 1-4-2.

2. निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भः सन्धार्यते स्त्रिया ।
   तद् गर्भलम्भनं नाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभिः ॥

अङ्कुर पैदा होता है, उसी प्रकार स्त्री-पुरूष के विधि पूर्वक संयोग से सन्तान का जन्म होता है ।[1]

गर्भाधान के समय की शारीरिक तथा मानसिक अवस्था का सन्तान पर गहरा प्रभाव पड़ता है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथा चिकित्साशास्त्रीय तथ्य है ।[2] कर्ण, अभिमन्यु और अष्टावक्र आदि के व्यक्तित्व इसके पुष्ट प्रमाण हैं ।

वैदिक काल में गर्भाधान संस्कार निश्चित शुभ मुहूर्त्त में देवताओं के स्तुतिपरक वैदिक मन्त्रों के साथ सम्पादित होते थे । मिताक्षरा में उल्लेख है कि- 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' मन्त्र के उच्चारण के साथ यह संस्कार पाणिग्रहीता स्त्री के साथ पहले [जीवन में केवल एक बार] किया जाता था ।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए सहवास की परम्परा थी । एक सन्तान के बाद मनुष्य सुखपराङ्मुख हो जाता था ।

---

1. ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्यात गर्भ:स्यात् विधिपूर्वक: ।
   ऋतुक्षेत्राम्बुजानां संयोगादङ्कुरो यथा ॥ सुश्रुत संहिता शारीरस्थान-2-34.
2. निषेकसमये यादृङ्नराचित्तविकल्पना ।
   तादृक्तस्वभावस्तम्भूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिग: ॥ गरूड पुराण - 15-16.
3. गर्भाधानं च विवाहादनन्तरं प्रथमोपगमे विष्णुर्योनिं कल्पयत्विति मन्त्रवत् केषांचिद्विहितम् । परेषामगर्भग्रहणात् प्रत्यूतु ।
   मिताक्षरा याज्ञवल्क्य 1-11.

वृहदारण्यकोपनिषद् में भी द्यावा-पृथिवी की स्त्री-पुरुष के रूप में कल्पना की गयी है। दोनों पुत्र प्राप्ति के लिये सहवास करते हैं तथा गर्भ-स्थ शिशु की रक्षा के लिए विष्णु को आहूत करते हैं। एक स्थान पर उल्लि-खित है कि द्यावा पृथिवी सन्तान की आकांक्षा से संयुक्त हुए थे, अब अलग होकर द्यावा पृथिवी अर्थात् पुरुष-स्त्री के मुखपरमुख रखकर उसके हृदय को प्रेम से सहलाते हुए "विष्णुर्योनिम् कल्पयतु" हे विष्णु! योनि को पुत्र उत्पन्न में समर्थ करो इस मन्त्र का श्रद्धा एवम् विश्वास के साथ उच्चारण करता है।[1]

भगवान् विष्णु एक ऐसे विशिष्ट देव है जो अनादि व अनन्त हैं, न सत् हैं, न असत् हैं। वह सर्वतः पाणिपादं, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् तथा सर्वतः श्रुतिमत् हैं।

जिस परमेश्वर विष्णु से समस्त भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्वजगत् व्याप्त है, उसको अपने उच्च कर्मों के द्वारा मनुष्य पूजकर परमसिद्धि

---

1. अथास्या उरू विहापयति विजिहीथां द्यावा-पृथिवी इति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखं संधाय त्रिरेना मनुलोमामनुमार्ष्टि विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टारूपाणि। असिञ्चति प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते। गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके गर्भं ते अश्विनौ देवा वा धत्तां पुष्कर स्रजौ।
   - वृहदारण्यकोपनिषद् - 6-4-21.

को प्राप्त होता है। पुरुष शोक एवम् आकांक्षा से मुक्त होकर सबभूतों में समभाव रखकर अपने में भगवान् विष्णु की पराभक्ति को निरन्तर विकसित करता है। भगवान् के स्वरूप को तत्त्वतः एवम् सम्यक्रूपेण जानकर उनमें प्रविष्ट हो जाता है। पुरुष को मोक्ष प्राप्ति के लिए स्वयम् को विष्णु को समर्पित करके निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए। मनुष्य को इसकी प्राप्ति समाधि एवम् आत्मशुद्धि से होती है तथा आनन्दमयी स्थिति में जीव विष्णु के साम्य को प्राप्त हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि उपनिषदों में भगवान् विष्णु की व्यापकता का समग्र निरूपण किया गया है।

नारायण के रूप में विष्णु :

नारायणोपनिषद् में विष्णु की कल्पना नारायण के रूप में हुई है। मन्त्रों के अधिष्ठातृतत्त्व ने विष्णु को तप एवं यज्ञादि कृत्यों से गम्य, एक मात्र परम पुरुष, शाश्वत, अप्रमेय, प्रलयकाल में स्थित प्रकृति के स्पर्श से रहित सर्वोच्च परम शक्ति एवम् परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। जगत् की दृश्यमान, अदृश्यमान, स्थूल, सूक्ष्म रूप तथा सभी दैवी शक्तियाँ उसी परब्रह्म से उत्पन्न होती हैं।

नारायण से प्राण, सर्वेन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी,

ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, प्रजापति और द्वादशादित्य उत्पन्न होते हैं।

नारायण नित्य, ब्रह्म, शिव, रुद्र, प्रजापति, शक्र, पाल्य, आदित्य, दिशायें, उर्ध्व, अधः, अन्तः, वाह्य और जो कुछ भूत भविष्य है, सब हैं।[1]

नारायण ही निष्कल, निष्कलङ्क, निरञ्जन, निराख्यात, शुद्ध देव हैं। विष्णु ही नारायण हैं और नारायण ही विष्णु।[2] वह प्रातः स्थापित करके

---

1. नारायात्प्राणो जायते। मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। नारायणाद्ब्रह्मा जायते। नारायणाद्रुद्रो जायते। नारायणादिन्द्रो जायते। नारायणात्प्रजापतिः जायते। नारायणाद्द्वादशादित्या रूद्रा वसवः सर्वाणि छन्दा सीति। नारायणात्प्रजायन्ते। नारायणात्प्रतीयन्ते। नारायणे प्रतीयन्ते। एतदृग्वेदशिरोऽन्धीते।

   अथ नित्यो नारायणः। ब्रह्मा नारायणः। शिवश्च नारायणः। रूद्रश्च नारायणः। प्रजापतिश्च नारायणः। शक्रश्च नारायणः। उर्ध्वश्च नारायणः। कालश्च नारायणः। आदित्यश्च नारायणः। दिशश्च नारायणः। अधश्च नारायणः। अन्तर्वहिश्च नारायणः। नारायण एवेदंसर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम्। श्रीमदाथर्वणनारायणोपनिषद्-

2. अथ निष्कलो निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणोऽस्ति न द्वितीयोऽस्ति कश्चन। य एवं वेद। विष्णुरेव स भवति स विष्णुरेव भवति।

रात्रिकृत पाप का नाश करता है तथा सायंकाल को स्थापित करके दिवस कृत पाप को नाश करता है। सायं और प्रात: के प्रतिष्ठापन पाप अपाप होता है।[1]

जगत् की प्रत्येक वस्तु को विष्णु का ही अंश स्वीकार करने के कारण विष्णु के विस्तृत स्वरूप की कल्पना की गई है। निखिलविश्व को प्रतीकात्मक रूप से पुरुषाकार माना गया है और विष्णु को विराट्-पुरुष माना गया है। नारायणोपनिषदं में विष्णु के इसी विस्तृत स्वरूप का वर्णन किया गया है।

उपनिषद्काल में भगवान् विष्णु की लोकप्रियता और महत्त्व की अधिकता के कारण उन्हें देवाधि देव ही नहीं अपितु ब्रह्म का साक्षात् सगुण स्वरूप माना जाने लगा। इनका व्यापक विराटरूप विश्व रक्षा में निपुण है। वेदान्त दर्शन में माया की धारण के उदय और विकाश के पश्चात् विष्णु में माया

---

1. प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायंप्रातरधीयानो पापोऽपापो भवति।

- श्रीमदाथर्वणानारायणोपनिषद्

को भी आत्मसात् कर लिया । माया उनकी वह शक्ति है, जिसकी सहायता से वे जगत् के प्राणियों को मोहित किये रहते हैं ।

---------::0::---------

षष्ठ अध्याय

वैदिक एवम् पौराणिक साहित्य में विष्णु का स्वरूप

वैदिक एवम् पौराणिक साहित्य में विष्णु का स्वरूप

सनातन धर्म न तो मसीह और इस्लाम धर्म की तरह पैगम्बरीय है और न बौद्ध धर्म की तरह रहस्यवादी है। इस रूप में सनातन धर्म विलक्षण है। इस धर्म की वेदों से लेकर पुराणों तक की अविच्छिन्न परम्परा एक ऐतिहासिक सत्य है। वाह्य जगत् एवम् जीवों के हृदय में ईश्वर का अन्तर्भाव सनातन धर्मावलम्बी देववाद का मूल सिद्धान्त है। प्रत्येक सनातनी विष्णु की सर्वव्यापकता पर विश्वास करता है, क्योंकि परमेश्वर विष्णु ही उनको प्रभावित एवम् नियमित करता है और उनकी प्रार्थना को सुनता है।

वैदिक काल में विष्णु सूर्य के गतिशील रूप के सूचक, इन्द्र के मित्र, यज्ञाधिष्ठातृ देव तथा त्रस्त मानवता के उद्धारक थे। वैदिक साहित्य में विष्णु के मानवीय एवम् शारीरिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है किन्तु उनका व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट नहीं है।

पुराणकारों ने विष्णु के व्यक्तित्व को जिस भाषा और शैली में चित्रित किया है, वह सरल, सरस, रोचक और पूर्णरूपेण प्रवाहमय है। पौराणिक साहित्य में, उत्तुङ्ग-तरङ्ग-तरङ्गिता-तरङ्गिणी के तुल्य वह प्रवाह, प्रसाद व प्रवेग है, जिसने अपने प्रबल प्रवाह धारा में बहकर विष्णु के प्रति अहृदय को सहृदय,

नीरस को सरस, अबोध को सुबोध, पापात्मा को पुण्यात्मा और अन्ततः नर को नारायण बना दिया है ।

वस्तुतः पुराणों में विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण राष्ट्रीय भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों का दमन, भौगोलिक अनेकता में एकता, जीवन दर्शन की व्यवहारिक दृष्टि से व्याख्या, अधिकारों के प्रति जागरूकता, महिलाओं के अबालत्व त्याग की प्रवृत्ति, राजनीति, कूटनीति और दण्डनीति का व्यवहारिक प्रदर्शन, राजधर्म का सर्वाङ्गीण निरूपण, आख्यान साहित्य का अक्षयकोष, नीति-शास्त्र की बहुमूल्य निधि एवम् चतुर्वर्ग की समस्याओं का समाधान है ।

विष्णु के बाह्य आकार के विषय में वैदिक वाङ्मय पूर्णतः मौन है, किन्तु पौराणिक काल में विष्णु के श्यामवर्ण, कोमल शरीर तथा चतुर्भुज स्वरूप का वर्णन है । इन चारों भुजाओं में वे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं । उनके मनमोहक शरीर में पीताम्बर, गले में वैजयन्ती माला तथा कौस्तुभ मणि सुशोभित होती रहती है । उनके नेत्र नीलकमल के समान तथा दृष्टि करुणामयी है । वैकुण्ठ में विद्यमान क्षीरसागर में शेषशय्या पर विराजमान नारायण के चरणों को लक्ष्मी सदा दबाया करती हैं । इनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स नामक चिह्न है । एक बार त्रिमूर्तियों में सात्त्विक गुण प्रधान देवता की परख करने का भार

भृगु पर सौंपा गया । भृगु ब्रह्मा एवम् शिव के पास पहुँचे, पर वहाँ से भगाये गये । भृगु विष्णु के पास पहुँचे, , तो विष्णु को कमला के गोद में सिर रखा सोते देखकर, विष्णु के वक्षस्थल पर पादप्रहार किया । इसी पादप्रहार के चिह्न को पुराणकारों ने 'श्रीवत्स' नामक अलङ्कार से अभिहित किया है । विष्णु का वाहन गरुड़ है । सारथि दारुक है । अश्व-शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और वलाहक हैं । विष्णु के शङ्ख का नाम पाँचजन्य, चक्र का नाम-सुदर्शन, गदा-कौमुदिकी, धनुष-शार्ङ्ग और खड्ग-नन्दक है ।

विष्णु के सोलह पार्षद है- विश्वक्सेन, सुषेण, जय, विजय, बल, प्रबल, नन्द, सुनन्द, भद्र, सुभद्र, चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद, कुमुदाक्ष, और सुशील है ।

पुराणों में विष्णु के पर्याय-नारायण, मुकुन्द, कृष्ण, बैकुण्ठ, गरुड़ध्वज, दामोदर, पुण्डरीकाक्ष, पद्मनाथ, मुरारि, हृषिकेश, केशव, अच्युत, पुरुषोत्तम, वनमाली, विश्वम्भर, विधु, कैटभारि, नरकान्तक, चतुर्भुज, वासुदेव, श्रीपति, कमलाकान्त, चक्रपाणि एवम् पुराणपुरुष आदि हैं ।

विष्णु के त्रिविक्रम से सम्बद्ध कतिपय मन्त्रों का उल्लेख संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में हुआ है , जिनके आधार पर पुराणकारों ने अपने पल्लवन कौशल

से एक विशाल आख्यान का भवन खड़ा कर दिया है ।

ब्रह्मपुराण के अनुसार-भगवान् विष्णु अपने दो ही पदों से समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त कर लेते हैं और तीसरे पग के लिए बलि से स्थान माँगते हैं,[1] तो बलि हँसकर कहता है कि -अब मैं आपके तीसरे चरण के लिए स्थान कहाँ से लाऊँ ? इस जगत् को तो आपने ही निर्मित किया है । यदि आपकी गलती से भूमि कम हो गयी तो मैं क्या करूँ ।[2]

भागवतकार ने तो ब्राह्मणों के इस सूक्ष्म आख्यान को एक रोचक, सजीव, मार्मिक तथा भक्ति-भाव से आप्लावित रसात्मक कथा बना डाला है । इस कथा को प्राचीन भारतीय कथा साहित्य का मणि मानना चाहिए । इसके अन्तर्गत विष्णु को सकल भुवनों का आच्छादक एवम् समस्त प्राणियों का रक्षक कहा गया है । प्रथम पग में भगवान् विष्णु पृथिवी को व्याप्त कर लेते हैं,

---

1. तृतीयस्य पदस्यात्र स्थानं नास्त्यसुरेश्वर ।
   क्व क्रमिष्ये भुवं देहि बलिं तं हरिरब्रवीत् ॥
   - ब्रह्मपुराण - 47-49.

2. विहस्य बलिरात्याह सभार्यः सकृताञ्जलिः ।
   त्वया सृष्टं जगत्सर्वं न स्रष्टाहं सुरेश्वर ।
   त्वद्दोषादल्पमभवत् किं करोमि जगन्मय ॥
   - वही - 47-50.

दूसरे चरण में-स्वर, महः, जनः तथा सत्यलोक को नाप लेते हैं। तीसरा डग भरने के लिए ब्रह्माण्ड में स्थान ही नहीं बचता। बलि अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार विष्णु के बचन को पूरा नहीं कर पाता और विष्णु उससे स्थान माँगते हैं। अन्त में वरुण बलि को अपने पाश में बाँध लेते हैं। शुक्राचार्य ने उसे भूमि देने के लिए मना भी किया परन्तु वह उनकी बात को भी नहीं स्वीकार किया।[1] वामन ने उसकी बहुत भर्त्सना की परन्तु वह क्रुद्ध भी नहीं हुआ और विनम्रता पूर्वक खड़ा रहा। अन्त में भगवान् विष्णु खुश होकर उसे पाताल लोक प्रदान करते है।[2]

पुराणों के अतिरिक्त महाभारत के वनपर्व तथा शान्तिपर्व में भी विष्णु के त्रिविक्रम से स्वरूप से सम्बद्ध वामनावतार की कथा का उल्लेख मिलता है।[3]

विरोचनस्य बलवान् बलिः पुत्रो महासुरः ।
अवध्यः सर्वलोकानां सदेवासुररक्षसाम् ॥

---

1. श्रीमद् भागवत - 8-19-43.
2. श्रीमद् भागवत - 8-21-1-10 से 20 तक।
3. महाभारत-शान्तिपर्व - 339-79 से 83 तक।

भविष्यति स शक्रं च स्वराज्याद् च्यावयिष्यति ।

त्रैलोक्येऽपहृते तेन विमुखे च शतक्रतौ ॥

अदित्यां द्वादशादित्य: संभविष्यामि कश्यपात् ।

ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे ॥

देवता: स्थापयिष्यामि स्वेषु स्थानेषु नारद ।

बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम् ॥

उपर्युक्त श्लोकों में भगवान् विष्णु नारद को अपने भावी वामनावतार के विषय में बताते हैं । लीलाधारी भगवान् विष्णु के चरणों की लीला अलौकिक है, जो बलि जैसे दानी को भी द्विविधा में डाल देती है । परन्तु नारायण स्वयम् ही उसकी रक्षा भी करते हैं ।

मत्स्य पुराण के अनुसार विष्णु के चरणों में अनेक देवता निवास करते हैं ।

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूद्वामन: ।

सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥

चन्द्रसूर्यौ च नयने द्यौर्मूर्धा चरणौ क्षिति: ।

विश्वेदेवा च जानुस्था जङ्घेसाध्या: सुरोत्तमा: ॥

अन्य पुराणों में भी विष्णु के त्रिविक्रम की कथा विस्तार में वर्णित है। विष्णु पुराण में तो इनके तृतीय चरण (परमपद) का महत्त्व सुन्दरतम ढंग से व्याख्यायित किया गया है।

वैदिक साहित्य में इन पादप्रक्षेपों का बीज रूप में जो अङ्कुरण हुआ था, वही सुदीर्घकाल के बाद पौराणिक साहित्य में पुष्पित पल्लवित एवम् फलित हुआ जिसका रसास्वादन पौराणिक काल से लेकर आज तक भक्त जन कथा को सुनकर कर रहे हैं।[1]

संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु को यज्ञ कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में सैकड़ों बार 'यज्ञो वै विष्णुः' आया है। यज्ञ और विष्णु की एक-रूपता तथा स्वयम् भगवान् विष्णु द्वारा यज्ञ की रक्षा, दोनों के तादात्म्य को प्रमाणित करता है। यजुर्वेद में विष्णु को यज्ञाधिष्ठातृ देव के रूप में आहूत किया जाता है। और पुनः हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए उनकी वन्दना की जाती है। विष्णु यज्ञ ग्रहण करके सकल मानवों की रक्षा करते हैं। शतपथ तैत्तिरीय ब्राह्मण में यज्ञ से सम्बन्धित कथाओं का विस्तृत उल्लेख हुआ है।

---

1. मत्स्य पुराण - 245-52, 53.

पुराणों में भगवान् विष्णु को सर्वोच्च देव के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है ।

विष्णु पुराण में भारत की धरती की प्रशंसा की गयी है और विभिन्न यज्ञों के सम्पादन से यज्ञमय, यज्ञपुरूष भगवान् विष्णु के उपासना का निर्देश दिया गया है ।[1]

पद्मपुराण में यज्ञ के अवसर पर विष्णु पूजन का सुन्दर विधान किया गया है । जो मनुष्य चक्रधारी विष्णु का पूजन करता है , वह मनुष्य इस संसार में अपने अभीष्ट मनोरथों का उपभोग करके, समस्त व्याधियों से रहित होकर, अन्त में सहस्रों युगों तक, भगवान् के मन्दिर में उन्हीं के सान्निध्य में रहा करता है ।[2] इसमें एक स्थान पर विष्णु के महत्त्व को चरमसीमा पर

---

1. पुरुषैर्यज्ञ पुरुषो जम्बूदीपे सदेज्यते ।
   यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुः अन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥
   - विष्णुपुराण - 2-3-21.

2. यत्नात्प्रक्षाल्य पात्राणि कृत्वा शुद्धानिवारिभिः ।
   यः पूजयेज्जगन्नाथं तस्यपुण्यं निशामय ॥

   इह भुक्त्वाऽखिलान्कामान्सर्व व्याधिविवर्जितः ।
   अन्ते युगसहस्राणि तिष्ठेत्केशवमन्दिरे ॥

   - पद्मपुराण - 49-12 से 13.

पहुँचकर, कहा गया है कि देवों को भी श्रेष्ठ देव चक्रधारी भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। विष्णु के पूजन में आने वाले जितने भी पात्र हैं, उनका प्रक्षालन करके उन्हें जलहीन कर दें।[1] मनुष्य, यक्ष, किन्नर और देव सभी भगवान् विष्णु के आश्रय से जन्म लेते हैं, जीवन यापन करते हैं और उसी परम-तत्त्व में विलीन हो जाते हैं। जीवन काल में जिसने श्रद्धाभाव से विष्णु के परमपद प्राप्ति के लिये यज्ञ सम्पन्न किया, वही पुण्यजन्मा है।

मत्स्य पुराण के एक उद्धरण के अनुसार जब बलि के गुरू शुक्राचार्य उससे बताते हैं कि परमेश्वर विष्णु तुम्हारे यज्ञ में वामन का रूप धारण करके विराज-मान हैं, तो वह खुश होकर कहता है कि मैं धन्य हूँ जिसके यज्ञ में स्वयम् यज्ञपति ब्रह्म स्वरूप आ रहे हैं। इससे ज्यादा श्रेयस्कर मेरे लिए और क्या हो सकता है ?[2]

---

1. पूजयेज्जगदीशस्य देव देवस्य चक्रिणः ।
   प्रक्षालितानि पात्राणि जल हीनान् कारयेत् ॥

   - पद्मपुराण - 49-8.

2. धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम् ।
   यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् मत्तः कोऽन्योधिकः पुमान् ॥

   - मत्स्यपुराण - 245-10.

श्रीमद् भागवत् पुराण विष्णु के यज्ञस्वरूप की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत करता है । इस पुराण में विष्णु को यज्ञावतार मानकर उसकी मानव रूप में कल्पना की गयी है । विष्णु को रुचि की पत्नी आकूति के गर्भ से सुयज्ञ रूप में जन्म लेते हुए चित्रित किया गया है । विष्णु अर्थात् सुयज्ञ की पत्नी का नाम दक्षिणा है और दोनों के सहवास से देवगण उत्पन्न होते हैं । देवगणों को सुयम नाम से अभिहित किया गया है ।[1]

आगे चलकर इस कथा का सम्यक् रूपेण वर्णन हुआ है जो संक्षेप में इस प्रकार है ।

प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥
यस्तयोः पुरुषः साक्षात् विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूतानपायनी ॥
तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ।
तुष्टायां तोषमापन्नो जनयद् द्वादशात्मजान ॥ [2]

---

1. जातो रूचेरजनयत् सुयमान सुयज्ञः ।
   आकूति सूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ - श्रीमद् भागवत् पुराण - 2-7-2.

2. श्रीमद् भागवत् पुराण - 4-1-3 से 5.

इन पुराणों के अतिरिक्त ब्रह्मपुराण,[1] पद्मपुराणादि में भी विष्णु को यज्ञेश, यज्ञपुरुष यज्ञवाहन, यज्ञावतारी आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। वैदिक काल से पौराणिक काल तक यज्ञ से विष्णु का तादात्म्य निरन्तर स्थापित होता रहा है। विष्णु का महत्त्व यज्ञ के निर्विघ्न समाप्ति में रक्षक के रूप में हुआ है। अतः विष्णु को यज्ञपति कहना भी समीचीन है।

वैदिक वाङ्मय में विष्णु को इन्द्र का सहायक उपेन्द्र कहा गया है। उपेन्द्र का अर्थ इन्द्र के अनुज, अर्थात् विष्णु से है। वैदिक देवमण्डल में इन्द्र सबसे शक्तिशाली देव हैं। ऋग्वेद में समस्त सूक्तों का चतुर्थांश 250 सूक्तों में इन्द्र के शौर्य और पराक्रम की प्रशंसा की गयी है। विष्णु का महत्त्व इन्द्र की तुलना में बहुत कम है। परन्तु पौराणिक काल में विष्णु साक्षात् परब्रह्म के रूप में वन्दनीय हैं और इन्द्र को केवल एक विलासी राजा के रूप में स्वीकार किया गया है। पुराणों में इन्द्र का कार्य केवल अप्सराओं के साथ विलास करना तथा

---

1. ब्रह्मपुराण - 1. 73-32.

2. 17-42.

अपने सिंहासन की रक्षा करना है । कभी-कभी तो वेदों के सर्वोच्च देव इन्द्र पुराणों में रमणियों के साथ रमण करते हुए अपमानित होते हैं । गौतम की पत्नी अहिल्या इसका उदाहरण है । विष्णु के अतिरिक्त अनेकश: देवगण पुराणों में नाम मात्र के देव रह गये हैं । परन्तु विष्णु का महत्त्व ब्राह्मण काल से पुराणों तक निरन्तर बढ़ता गया है ।

श्रीमद् भागवत पुराण में, कृष्ण द्वारा अपनी पूजा न पाकर इन्द्र अति-वृष्टि करते हैं और कृष्ण गोवर्धन पर्वत धारण करके प्राणियों की रक्षा करते हैं । अन्त में इन्द्र विनम्र भाव से भगवान् कृष्ण के चरणों में गिर पड़ते हैं । महाभारत में, खाण्डवदाह के समय कृष्ण-भक्त अर्जुन से युद्ध करते हुए इन्द्र को मुँह की खानी पड़ती है । पुराणों में इन्द्र की दशा वेदों की तुलना में अति दयनीय है । जबकि विष्णुजो इन्द्र के सहायक मात्र थे, उनकी पूजा इन्द्र ही नहीं वरन् वरुण, शिव और ब्रह्मा आदि भी करते हैं । दयालु विष्णु इन्द्र की विपत्ति प्राय: दूर करते हैं ।

एक बार राजा बलि ने इन्द्र से इन्द्र लोक छीन लिया, तो विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि को छलकर उनका लोक वापस दिलाया । यह निर्विवाद सत्य है कि पौराणिक साहित्य में विष्णु ही सर्वोच्च शक्ति के रूप में अधिष्ठापित हैं।

विष्णु के अवतारवाद का सिद्धान्त ब्राह्मणों तथा पौराणिक कथाओं में विशेषरूप से प्रतिपादित है आरण्यक ग्रन्थों में भी इनका सूक्ष्म चित्रण किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थों में संसार की रक्षा के लिए विष्णु के तीन अवतार वराह, मत्स्य और कश्यप का वर्णन प्राप्त है। तैत्तिरीयारण्यक में इन अवतारों के साथ ही नृसिंहावतार के आख्यान प्राप्त होते हैं। नृसिंहावतार की कल्पना मनीषियों ने सर्वप्रथम तैत्तिरीयारण्यक में किया है। इन सभी अवतारों में भगवान् विष्णु ने महाप्रलय के समय जल में डूबती हुई पृथ्वी को डूबने से बचाया है। पौराणिक साहित्य में इन अवतारों के साथ कुछ अन्य अवतारों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है , जिनमें कृष्ण और राम प्रमुख हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इन दोनों महापुरूषों को, शक्ति एवम् सामर्थ्य की प्रचुरता के कारण विष्णु से सम्बद्ध कर दिया गया है। परवर्ती साहित्य में तो विष्णु के अतिरिक्त कुछ देवताओं को अपनी शक्ति से मनुष्यों को उत्पन्न करने में समर्थ मान लिया गया है।

वायु पुराण में सर्वप्रथम ब्राह्णकालिक वराहरूप की कल्पना की गयी है। लीलाधारी विष्णु ने जल में डूबी हुई पृथ्वी को जल से निकालने के लिए वराह का रूप धारण किया। उस समय उनका शरीर दश योजन लम्बा तथा दश योजन ऊँचा था। उनका रंग श्याम मेघ के सदृश तथा आवाज मेघध्वनि के समान थी।

विशाल पर्वत के सदृश लम्बे, सफेद, तीक्ष्ण और कठोर दाँत से युक्त वराह की आँखें अग्नि एवम् बिजली के समान चमकदार थीं । भगवान् विष्णु ने ऐसे ओजस्वी रूप को धारण करके पृथिवी की रक्षा के लिए रसातल में प्रवेश किया ।[1]

ध्यातव्य है कि ब्राह्मणों में विष्णु का प्रजापति से तादात्म्य स्थापित करके विभिन्न अवतारों में दर्शाया गया है । किन्तु पुराणों में विष्णु का परम-पुरुष नारायण से तादात्म्य करके अवतारवाद को चित्रित किया गया है । मूल रूप में तो विष्णु ही विभिन्न अवतारों में त्रस्त मानवता की रक्षा करते है । नारायण और प्रजापति उस परमतत्व के ही स्वरूप है ।

लिङ्गपुराण के कुछ प्रमुख श्लोकों में इस कथा का वर्णन हुआ है ।

रात्रौ चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजङ्गमे ।

सुष्वापाम्भसि यस्तस्मान्नारायण इति स्मृत: ॥

---

1. जल क्रीडासु रुचिरं वराहं रूपमस्मरत् ।
   दशयोजनविस्त्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम् ॥
   नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिस्वनम् ।
   विद्युदग्नि प्रकाशाक्षमादित्य सम तेजसम् ॥
   रूपमास्थाय विपुलं वाराहमितं हरि: ।
   पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥ - वायुपुराण - 6-12 से 14.

शर्वर्यन्ते प्रबुद्धो वैदृष्ट्वा शून्यं चराचरम् ।

स्रष्टुं तदा मतिं चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदां वर: ॥

उदकैराप्लुतां क्ष्मां तां समादाय सनातन: ।

पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमाश्रित: ॥

विष्णुपुराण में नारायण ब्रह्मा के रूप में पृथ्वी को जल से बाहर निकालते हैं ।

ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान् यथा ।

ससर्ज सर्वभूतानि तदाचक्ष्व महामुने ॥

प्रजा: ससर्ज भगवान् ब्रह्मा नारायणात्मक: ।

प्रजापति पतिर्देवो यथा तन्मे निशामय ॥

अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थित: प्रभु: ।

ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादि: सर्वसंभव: ॥

स्थित स्थितरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापति: ।

प्रविश्य तदा तोयमात्मा धारो धरा धर: ॥[1]

---

1. विष्णु पुराण - 1-4-1, 2; 3, 4, 10.

ब्राह्मणों तथा आरण्यकों में सन्दर्भित विष्णु के कूर्म और मत्स्यावतार में परिवर्तन करके पुराणकारों ने वर्णन किया है ।

श्रीमद्भागवत में यही कथा शुकदेव जी परीक्षित के प्रश्न के पश्चात् उत्तर के रूप में देते हैं ।[1] विष्णु के मत्स्यावतार के सम्बन्ध में एक तथ्य और विचित्र है कि पृथिवी के जलप्लावन की कथा अवेस्ता में 'जलौघ की कथा' विवस्वान् के पुत्र यम से सम्बन्धित है । अवेस्ता में विवस्वान् को वीवङ्हन्त तथा यम को यिम कहा गया है । इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित मत्स्यावतार की कथा पुराणों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिपादित की गयी है । अनेक पुराणों में तो मूलकथा में समूल परिवर्तन करके नवीन कथा सृजित हुई है ।

तैत्तिरीयारण्यक के बाद पुराणों में, कूर्मावतार विष्णु का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह वैदिक साहित्य से पूर्णरूपेण भिन्न है । पुराणों के अनुसार कच्छप के पीठ पर पृथिवी रुकी हुई है ।[2] जब कच्छप करवट लेता है तो भूकम्प आ

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण - 8-24-1 से 57 तक

2. मत्स्यपुराण - 256-75.

   मार्कन्डेयपुराण - 58.

जाता है।ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु कूर्म के रूप में प्रकट नहीं हुए थे, अपितु लोक विश्वास में ऐसी कल्पना की गयी थी। परन्तु केवल भारतीय ही नहीं अपितु, चीन, जापान, अमरीका के लोक भी कछुए द्वारा पृथिवी धारण करने की क्षमता को स्वीकार करते हैं।[1]

पद्मपुराण में तो कच्छप के इस स्वरूप का महत्त्व अन्य पुराणों की अपेक्षा कहीं अधिक है।[2] कूर्म पुराण में तो कूर्मावतारी जनार्दन विष्णु को विविध विद्याओं का अधिष्ठाता माना गया है।

पुराणों में एकाएक लक्ष्मी का विष्णु से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाना एक विचित्र बात है। क्यों कि पुराणों में वर्णित विष्णु की सभी विभूतियों का अङ्कुरण सूक्ष्म रूप में वैदिक साहित्य में हुआ है। मेरा अनुमान है कि अथर्ववेद में विष्णु का वसु (धन) से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है।[3]

---

1. डब्ल्यू - श्मिट - डेर उअरश्पृङ्ग डेर गाटसइडे।
   - भाग-2 - पृष्ठ संख्या - 445.
   सन् - 1929.

2. पद्मपुराण - 5.

3. अथर्ववेद - 7-26-8.

ऋग्वेद में भी ऋषि विष्णु के संरक्षण में अपने पुत्र पौत्रादि के साथ धन का प्रचुर मात्रा में उपभोग करना चाहता है । सम्भवतः यही 'श्री' पुराणों में विष्णु के प्रिय लक्ष्मी के रूप में आयी है । ऋग्वेद की ऋचाओं से लेकर पुराणों की कथाओं में 'श्री' विष्णु के साथ अभिन्न रूप से विद्यमान रहती है ।[1] यथा विष्णु सर्वव्यापक हैं तथैव लक्ष्मी भी नित्य और सर्वव्यापक है । लक्ष्मी शाश्वत एवम् अप्रतिम शक्ति सम्पन्न देवी है ।

वैदिक साहित्य में 'श्री' समस्त विभूतियों के संयुक्त तत्त्व का मानवीकरण हैं । यद्यपि शतपथ ब्राह्मण के एक आख्यान में 'श्री' की स्वतन्त्र देवी के रूप में कल्पना की गयी है । इनका वर्णन वैदिक काल में सूक्ष्म रूप में हुआ है । वेदों से लेकर उपनिषदों तक कहीं भी 'श्री' की विष्णु की पत्नी के रूप में कल्पना नहीं की गयी है । इनके स्वरूप का भौतिक आधार न होने के कारण, भावात्मक अधिक है । पौराणिक साहित्य में 'श्री' की कल्पना विष्णु की प्रियवल्लभा पत्नी के रूप में की गयी है।सागर मन्थन से ये उत्पन्न होती हैं और भगवान् विष्णु को स्वयम् पति के रूप में वरण करती हैं । वे सदा भगवान् विष्णु

---

1. ऋग्वेद - 6-49-13.

के हृदय में निवास करती हैं ।[1] इनका दूसरा नाम कमला भी है । कमला कभी विष्णु से अलग नहीं होती हैं ।

ऋग्वेद की अपेक्षा ब्राह्मणग्रन्थों में विष्णु का महत्त्व बहुत बढ़ चुका था; वे पुराणों में अपने बढ़ते हुए प्रभुत्व के कारण परमेश्वर पद पर आसीन हो गये । वस्तुत: विष्णु का महत्त्व उपनिषदों में ही अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था, क्योंकि मानवमात्र मोक्ष की अभिलाषा से विष्णु के परमपद की कामना करता था । शतपथ ब्राह्मण एवम् तैत्तिरीयारण्यक के आख्यानों से स्पष्ट हो चुका है कि पुराणों की रचना के पहले भगवान् विष्णु परमैश्वर्य को प्राप्त करके देवों में श्रेष्ठ देव हो गये थे ।[2] इनके तीनों पदन्यासों में समस्त भुवनों का व्याप्त होना यह सिद्ध कर देता है कि वेदों में ही विष्णु की कल्पना सर्वव्यापक देव के रूप में की गयी है ।

---

1. दिव्यमाल्याम्बर धरा स्नाता भूषण भूषिता ।
   पश्यतां सर्व देवानां ययौ वक्षस्थलं हरि: ।
   तया विलोकिता देवा हरि: वक्षस्थलस्तया ॥

   – विष्णुपुराण – 1-9-105-6.

2. शतपथ ब्राह्मण – 14-1-1.

अतः स्पष्ट है कि पुराणों में सर्वोच्च देव के रूप में वर्णित विष्णुदेव वैदिक साहित्य में भी श्रेष्ठ देव थे।

अव्यक्त रूप भगवान् विष्णु (जगत्पति) ही हिरण्यगर्भ रूप से उस अण्ड से स्वयमेव विराजमान रहते हैं और रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा के रूप में संसार की सृष्टि के लिए उद्यत होते हैं। सृष्टि के उत्पत्ति के पश्चात् भगवान् विष्णु कल्पान्तपर्यन्त प्रत्येक युग में उसका पालन करते हैं। कल्पान्त में भी विष्णु अति दारुण तमोप्रधान गुण धारण कर समस्त भूतों का भक्षण कर लेते हैं तथा विश्व को जलमय करके स्वयम् शेष शय्या पर शयन करते हैं। जब भोले विष्णु निद्रा से जाग्रतावस्था में आते है तो फिर ब्रह्म रूप में सृष्टि की रचना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार परमेश्वर विष्णु विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम धारण करते हैं।

सत्यता तो यह है कि विष्णु ब्रह्मा में अपनी ही सृष्टि, पालक विष्णु के रूप में अपना ही पालन और संहारक शिव के रूप में अपना ही उपसंहार किया करते हैं। अतः वे ही कर्त्ता, पालक और संहर्ता हैं, वे ही वरद, वरिष्ठ और वरेण्य हैं।

विष्णु पुराण में तो मैत्रेयी के आग्रह पर पराशर जी ने कहा कि जब-जब द्वापर युग आता है, भगवान् विष्णु व्यासरूप में अवतीर्ण होकर, मनुष्य के बल, बीज और तीव्र तेज को अल्प जानकर उनके कल्याण के लिए वेदों का विभाग करते हैं। इस प्रकार अब तक वेदों का 28 बार विभाग किया गया है। विष्णु मानव रक्षा के लिए स्वयम् विशाल कष्टों का सहन कर लेते हैं।

भगवान् विष्णु का दयालु हृदय जो आर्त्तजिज्ञासु तथा प्रेमी जनों की रक्षा करता है, वही कठोरता धारण करके रजनीचरों तथा दुष्टात्माओं का संहार भी करता है मार्कण्डेय पुराण[1] के अनुसार कल्पान्त में जब सम्पूर्ण जगत एकार्णव में निमग्न

---

1. उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
   योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।।

   आस्तीर्य शेषम भजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
   तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।।

   विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
   स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।। ----

हो रहा था और सर्वेश्वर विष्णु शेषनाग की शैय्या बिछाकर योग निद्रा का आश्रय लेकर सो रहे थे। उस समय उनके कानों के मैल से दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभ नाम से विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्माजी का वध करने को तैयार हो गये। भगवान् विष्णु के नाभिकमल में विद्यमान प्रजापति ब्रह्माजी ने जब दोनों असुरों को अपने पास आया और भगवान् को सोया हुआ देखा, तो एकाग्रचित्त होकर, उन्होने भागवान् विष्णु को जानने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योग निद्रा का स्तवन प्रारम्भ किया। जो इस विश्व की अधीश्वरी, जगत् को धारण करने वाली, संसार का पालन और संहार करने वाली तथा तेजः स्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति हैं।

---- दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।

तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थित : ।।

मार्कण्डेय पुराण - 1/66 से 69 तक

मधुकैटभवध

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार: स्वरात्यिका ।

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।।

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषत: ।

त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ।।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वैयैतत्सृज्यतं जगत् ।

विष्णु शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।।

कारितास्ते यतो तस्त्वां क: स्तोतुंशक्तिमान भवेत ।

सा त्वमित्थं प्रभावै: स्वरुदारैर्देवि संस्तुता ।।

मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभो ।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।।

बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ।।[1]

---

1. मार्कण्डेय पुराण - मधुकैटभ वध - प्रथम वध .73,.74, 75, 84, 85

जब ब्रह्माजी ने वहाँ मधु और कैटभ को मारने के उद्देश्य से भगवान् विष्णु को जगाने के लिये तमोगुण की अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा की इस प्रकार स्तुति की तब वे भगवान के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्ष: स्थल से निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी की दृष्टि के समक्ष खड़ी हो गयी । योगनिद्रा से मुक्त होने पर जगत् के स्वामी भगवान् जनार्दन उस एकार्णव के जल में शेषनाग की शय्या से जाग उठे । फिर उन्होने उन दोनों असुरों को देखा । वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोध से लाल आँखें किये ब्रह्माजी को खा जाने के लिये उद्योग कर रहे थे । तब भगवान् श्री हरि ने उठकर उन दोनों के साथ पाँच हजार वर्षों तक केवल बाहुयुद्ध किया । वे दोनों भी अत्यन्त बल के कारण उन्मत्त हो रहे थे । इधर महामाया ने भी उन्हें मोह में डाल रखा था, इसलिये वे भगवान् विष्णु से कहने लगे - 'हम तुम्हारी वीरता से संतुष्ट है । तुम हम लोगों से कोई वर माँगो' ।

चक्रधारी भगवान् विष्णु ने कहा कि यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथ से मारे जाओ । बस, मैंने इतना सा ही वर माँगा है । इस प्रकार

---

1. मार्कण्डेय पुराण - मधुकैटभवध - प्रथम अध्याय

86, 87, 88 से 95 तक

धोखे में आ जाने पर जब उन राक्षसों ने सर्वत्र जल ही जल देखा तब कमलनयन भगवान् से कहा जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो। तब 'तथास्तु' कहकर शंख, चक्र और गदाधारण करने वाले भगवान ने उन दोनों के मस्तक अपनी जाँघ पर रखकर चक्र से काट डाले।

अतः इस आख्यान से स्पष्ट है कि लीलाधारी विष्णु ने ब्रह्मा की रक्षा करते हुए मधु, कैटभ का वध करके सकल भूतल के त्रस्त मानवों की रक्षा किया है। जो उनके स्निग्ध चरित्र एवं श्रेष्ठ व्यक्तितत्त्व का परिचायक है।

विष्णु के नृसिंहावतार का उल्लेख सर्वप्रथम तैत्तिरीयारण्यक में किया गया है। जिसमें नृसिंह को जगत् का आदिकरण एवम् परमतत्त्व मानकर उपासना की गई है। लेकिन उल्लेखनीय है कि न तो कहीं हिरण्यकशिपु का उल्लेख है और न कहीं नृसिंह को अर्द्ध मानव तथा अर्ध सिंह रूप का। तैत्तिरीयारण्यक में नृसिंह सूक्ष्म एवम् अध्यात्मिक भावों का प्रतिनिधि है।

---

1. मार्कण्डेय पुराण - मधुकैटभवध - प्रथम अध्याय 100 से 104 तक

भगवान् विष्णु के नृसिंहावतार का रोमाञ्चकारी चित्रण पुराणों में हुआ है । मत्स्य पुराण में प्राप्य इस उपाख्यान को तीन अध्यायों में पल्लवित किया गया है ।[1] कृत युग में एकबार दैत्यों का आदि पुरूष हिरण्यकशिपु घोर तपस्या कर रहा था । ब्रह्माजी उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे दर्शन देते हैं तो वह उनसे विनम्र भाव से यह वर माँगता है कि -

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसा: ।
न मानुषा: पिशाचा व हन्युर्मांम् देवसत्तम् ।।

ऋषयो वा न मां शापै: शपेयु: प्रपितामह ।
यदि मे भगवान् प्रीतों वर एष वृतो मया ।।

न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चाद्रेण न दिवा न निशा थवा ।।

हिरण्यकशिपु ब्रह्मा के वरदान को प्राप्त करने के पश्चात प्रजा वर्ग को

---

1. मत्स्य पुराण - ‡160, 161, 162 अध्याय‡

दुःख देना प्रारम्भ करता है । देवता भी उसके कष्ट से दुःखी होने लगे और रक्षा के लिये विष्णु के पास पहुँचे । दयालु विष्णु ने देवताओं को आश्वासन दिया और स्वयं नृसिंह रूप में हिरण्यकशिपु के पास पहुँच गये । हिरण्यकशिपु का पुत्र वेश-धारी विष्णु को पहचान लेता है और अपने पिता से प्रार्थना करता है कि यह नृसिंह नहीं, अपितु अखिल ब्राह्माण्ड निष्पादक भगवान् विष्णु हैं, किन्तु हिरण्यकशिपु पुत्र की प्रार्थना को न स्वीकार करते हुए सैनिकों को नृसिंह को खींच कर मार डालने का आदेश देता है ।

उस समय हिरण्यकशिपु तथा नृसिंह के बीच भयंकर युद्ध होता है जिसमें चक्र-धारी भगवान् विष्णु अपने सहायक ओङ्कार की सहायता से उस दैत्य का वध करते हैं।[1] मत्स्य पुराण के इस आख्यान में भक्त प्रह्लाद की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है । मार्कण्डेय पुराण में प्रहलाद का उल्लेख नहीं है ।[2]

---

1. नृसिंहतापनीय उपनिषद्

2. मार्कण्डेय पुराण - 4-55

कृत्वा नृसिंहरूप च हिरण्यकशिपुर्हतः ।

विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः ।। मार्कण्डेयपुराण -4-56

विष्णु पुराण तथा भागवत् पुराण में भक्त प्रह्लाद के स्निग्ध चरित्र एवम् विनम्र स्वभाव का अत्यन्त विस्तार से वर्णन हुआ है । विष्णु पुराण ने प्रह्लाद की उच्चकोटीय भक्ति भावना तथा अनन्य विष्णु-परायणता का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है । विष्णु विरोधी हरिण्यकशिपु प्रह्लाद के वध के लिये घोर यत्न करता है । परन्तु लीलाधारी विष्णु के सर्वतो भावेन रक्षा के कारण असफल हो जाता है ।

भक्त प्रह्लाद के अत्कट विष्णु-भक्ति से क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु उसे समुद्र में डूबोकर ऊपर से विशाल पर्वत खण्डों से दबवा देता है । शिला खण्डों से दबा हुआ भक्त प्रह्लाद जगत्-स्रष्टा भगवान् विष्णु की करूणा भाग से आप्लावित होकर स्तुति करता है ।[1]

चक्रधारी विष्णु अपने भक्त के हृदय में प्रकट होते हैं तब प्रह्लाद उनसे दो वर की याचना करता है । प्रथम वर में वह विष्णु चरणों में सर्वदा विद्यमान रहने वाली अखण्ड निष्ठा माँगता है और दूसरे में अपने पिता की पापों से मुक्ति

---

1. ततो दैत्या दानवाश्च पर्वतैस्तं महोदधौ ।

आक्रम्य चयनं चक्रुर्योजनानि सहस्रशः ।। विष्णुपराण - 1/19/62

मयि द्वेषानुबन्धो भूद् संस्तुतावुद्यते तव ।

भत्पितुस्तत्कृत पापं देव तस्य प्रणश्यतु ।।

शस्त्राणि पातितान्यगे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ ।

दशतश्चोरगैर्दत्तं यादि्ष मम भोजने ।।

अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानिमें ।

त्वयि भक्तिमतो द्वेषादधं तत्संभवं च यत ।

त्व प्रसादात्प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत में पिता ।।[1]

प्रह्लाद को जीवित देखकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त प्रसन्न होता है और उसका करूण भाव से आलिंड्न करके रोते हुए कहता है कि बेटा तुम अभी जीवित हो ।[2]

स चापि पुनरागम्य ववन्दे चरणौ पितु : ।

तं पिता मूध्न्र्युपाध्राय परिष्वज्य च पीर्ि तम् ।।

---

1. ततो दैत्या दानवश्च पर्वतैस्तं महोदधौ ।

आक्रम्य चयनं चक्रुर्योजनानि सहस्रशः ।। विष्णु पुराण 1-20-21 से 24 तक

2. विष्णु पुराण 1/20/29 से 32 तक

जीवसीत्याह वत्सेति बाष्पार्द्रनयमो द्विज ।।

प्रीतिमांश्चाभवत् तस्मिन्नतापी महासुर: ।
गुरुपित्रोश्चकारैवं शुश्रुषां सोऽपि धर्मवित् ।।

पिर्युपरतिं नीते नरसिंस्वरूपिणा ।
विष्णुना सो पि दैत्यानं मत्रेयाभूत् पतिस्तत: ।।

हिरण्यकशिपु का हृदय विष्णु की भक्ति में रम जाता है और वह शान्तचित्त होकर भगवान् का भजन करता है । इसमें कहीं भी विष्णु द्वारा हिरण्यकशिपु के वध का कोई उल्लेख नहीं है । अत: ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में विष्णुपुराण एक अलग परम्परा का चित्रण करता है । जिससे स्पष्ट है कि विष्णु पुराण का उद्देश्य विष्णु की महत्ता तथा उनकी भक्ति के प्रभाव का वर्णन करना है ।

भागवतकार की कथा विष्णु पुराणकार की कथा से भिन्न है । भागवत् के अनुसार एक बार हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वत पर तपस्या कर रहा था तो इन्द्र ने अवसर पाकर उसकी गर्भवती पत्नी कयाधू का हरण कर लिया किन्तु देवर्षि नारद ने छुड़ा लिया और अपने आश्रम में ले जाकर ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य का उपदेश दिया ।

जिसका संस्कार गर्भस्थ शिशु प्रह्लाद पर पड़ा ।[1]

ज्येष्ठ भ्राता हिरण्याक्ष का वध करने के कारण हिरण्यकशिपु भगवान् विष्णु का शत्रु वन चुका था । अतः वह नहीं चाहता था कि उसका बेटा विष्णु की उपासना करे अनेक बार चेतावनी देने पर भी जब प्रह्लाद विष्णु भक्ति को नहीं छोड़ता तो हिरण्यकशिपु उसे बहु विधि से मार डालने का निरन्तर प्रयास करता है ।[2]

---

1. ऋषिः कारूणिकस्तस्याः प्रादाद उभयमीस्वरः ।

   धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ।।

   तद् तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वात् मातुस्तिरोदधे ।

   ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहाद् स्मृति ।।

   श्री मद्भागतवत पुराण 7/7/15, 16

2. नदन्तो भैरवान् नादाश्चिन्धि भिन्धीति वादिन : ।

   आसीनं वाहन छूलैः प्रह्लादं सर्वभर्मसु ।।

   दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ।

   मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभौ जनैः ।।   वही 7-5-40, 43

प्रयास में असफल होकर वह स्वयं प्रह्लाद के वध के लिये उद्यत होकर कहता है कि "देखें विष्णु तुम्हारी कैसे रक्षा करते हैं ।"

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वर: ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ?

सो हं विकत्थमानस्य शिर: कायाद् हरामि ते ।
गोपायस्व हरिस्तादय यस्ते शरणमीप्सितम् ।

एंव दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुर: ।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात् स्तम्भ तता तिबलं स्वमुष्टिना ।।

तदैव तस्मिन् निनदो ति भीषणो बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।
यं वै स्वाधिष्ण्योपगतं त्वजादय: श्रुत्वा स्वधामाप्ययभंग मेनिरे ।।

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण 7/8/13 से 18 तक

2. वही 7/8/19 से 39 तक

अन्त में भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु का वध करते हैं और प्रह्लाद की रक्षा करते हैं ।

अत: स्पष्ट है कि आरण्यक साहित्य से पौराणिक साहित्य तक नृसिंहावतार के आख्यानों में भिन्नता होने पर भी सबकी मूल पृष्ठभूमि समान है । विष्णु के नारायण विषयक कल्पना का विकास ब्राह्मण सवम् आरण्यक ग्रन्थों में हुआ है । शतपथ ब्राह्मण में पुरुष-नारायण को क्रमश: प्रात: मध्याह्न तथा सायंकालिक सवनों द्वारा यज्ञ स्थल से वसुओं, रुद्रों एवम् आदित्यों को दूर कर देने वाला निर्देशित किया गया है । उस स्थान पर नारायण स्वयमेव विराजमान है ।

तैत्तिरीयरण्यक में विष्णु रूप नारायण को परम शक्तिशाली एवम् परम पुरूष विशेषण से विभूषित किया गया है । पुराणों में भगवान् विष्णु को नारायण रूप में प्रतिष्ठापित करते हुए सम्पूर्ण जगत् का नियन्ता कहा गया है । नारायण रूप में ही विष्णु त्रस्त मानवता के कल्याण के लिये दुष्टों का संहार करते हैं । धीरे-धीरे नारायण का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया कि सर्वत्र उनकी मूर्ति देवालयों में स्थापित

---

1. शतपथ ब्राह्मण 12/3-4

करके पूजा की जाने लगी । अधिकांश यज्ञों में हविष्यान्न ग्रहण करने के लिये नारायण का आह्वान होने लगा ।

पुराणों में विष्णु के लिये 'गोविन्द' शब्द का अधिकतर प्रयोग हुआ है । जिसका द्वितीय अर्थ गोपाल या गोस्वामी है । यह 'गोविन्द' शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में केवल एक बार आया है । यहाँ गोविन्द शब्द इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र के एक अन्य विशेषण केशिनिषूदन की भाँति यह विशेषण (गोविद) भी, जब कृष्ण प्रधान देव के रूप में प्रतिष्ठित होने लगे हैं उस समय पुराणकारों ने अपने अभीष्ट देव कृष्ण के लिये अपना लिया गया हो । कालान्तर में यही 'गोविद' 'गोविन्द' के रूप में परिणित हो गया ।

भगवान् विष्णु गोविन्द रूप में मनुष्यों के आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाले आराध्य देव के रूप में वन्दनीय हो गये । अतः स्पष्ट है कि विष्णु कभी नारायण के रूप में तो कभी गोविन्द और जर्नादन के रूप में निरन्तर प्राणियों की रक्षा करते हैं ।

वैदिक वाङ्मय में विष्णु का जिस परमशक्ति (प्राकृतिक शक्ति) के रूप में मानवीकरण हुआ है, उसी का पौराणिक साहित्य में कृष्ण के रूप में वर्णन किया गया

है । विष्णुपुराण के अनुसार अक्रूर जी ने शेषशैय्या पर विराजमान भगवान् कृष्ण को जब देखा तो वे आश्चर्य चकित होकर विनम्र भाव से स्तुति करते हुए बोले - हे प्रभो आप अकेले ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और परमात्मा इन पाँचों रूपों में स्थित रहते हैं । हे सर्वात्मन क्षर-अक्षरमय परमेश्वर आप स्वयमेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में कल्पित किये जाते हैं । आप नित्य निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्म है । आप अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, समीर, अग्नि वरूण कुवेर और यम के रूप में विभिन्न रूपों में सम्पूर्ण विश्व का संचालन करते हैं ।

---

1. भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भगवान् ।

   आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पंचधा स्थित : ।

   प्रसीद सर्वे सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर ।

   ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभिः कल्पनाभिरूदीरितः ।। विष्णु पुराण

विश्वात्मा त्वाभिति विकारहीन मते ।

तत्सर्वस्मिन्न हि भवतो सि किञ्चिदन्यद ।।

त्वं ब्रह्मा पशुपतिर्यमा विधाता । -------

ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को, प्राणियों के मोक्ष के लिये सर्वोच्च माना गया है । भगवान् कृष्ण ने नन्द को पूर्ण रूपेण विश्वास दिलाते हुए कहा कि विश्व का नियन्ता मैं ही हूँ । मेरे भय से वायु चलती है, सूर्य एवम् चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं । इन्द्र समय पर वर्षा करते हैं, अग्नि जलती है, मृत्यु सब जीवों को हटाती रहती है और वृक्ष समयानुसार पुष्प फल आदि धारण करते हैं । मैं सर्वेश्वर पूर्ण ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ । ब्रह्मा मन है, सनातनि प्रकृति बुद्धि है प्राण विष्णु है । मुझे इस रूप में जानने वाला मेरा भक्त जीवन मुक्त होता है और उस पर जन्म तथा जरा-मरण का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता ।[1]

------- धाता त्वं त्रिदशपतिस्समीरणो ग्निः ।।

सोमेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको । विष्णु पुराण

1. मद्भयाद्वाति वातो यं रविर्भाति च नित्यशः ।

भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति ।।

वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु ।

विभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च ।। -------

पद्म पुराणकार ने लीलाधारी कृष्ण के जन्म एवम् बाल्यकाल को बहुत ही मार्मिक ढ़ंग से चित्रित किया है । एक बार वेदव्यास ने विष्णु के परम तत्व को जानने के लिये सहस्त्रों वर्ष तक घोर तप किया । तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वर मागने को कहा । उन्होने याचना की कि हे मधुसूदन । मैं आपके अद्भुत्त तत्त्व रूप को ही जानना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा मैं अपने सत्ता स्वरूप निर्विकार, सच्चिदानन्द तथा दिव्य निग्रह रूप को, जिसका रहस्य वेदों से भी छिपा हुआ है आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ ।

यह कहकर भगवान् ने व्यास जी को अपना बालकृष्ण स्वरूप दिखाया, जिसमें स्वयमेव विष्णु एक दिव्य बालक के रूप में कन्याओं और बालकों से घिरे हुए एक कदम्ब वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए हैं । भगवान् ने कहा हे मुनिवर यह मेरा दिव्य रूप निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और पूर्ण सच्चिदानन्द विग्रह है ।[1]

------- अहमात्मा च सर्वेशा सर्वज्ञानात्मक: स्मृत: ।

ममो ब्रह्मा च प्रकृतिबुद्विरूपा सनातनी ।

प्राणा विष्णुश्चेतना सा पदमा तु चाधि देवता ।

जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहर: । ब्रह्मवैवर्त पुराण

इस कमल लोचन स्वरूप से बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्त्व नहीं है । वेद इसी स्वरूप का वर्णन करते हैं तथा यही कारणों का भी कारण है । यही सत्य, नित्य, परमानन्द स्वरूप, चिदानन्द-घन तथा सनातन शिव तत्त्व है ।[1]

वैदिक साहित्य में विष्णु के रमावतार की कल्पना का सर्वथा अभाव है । पत जलि के महाभाष्य तथा अमरकोश के ब्राह्मण-धर्म के देवमण्डल में भी राम शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है । 'राम विष्णु के अवतार थे' इस तथ्य का संङ्केत पुराणों में ही

-----1. सद्भावं विक्रियाहीनं सच्चिदानन्द विग्रहय ।
पश्याद्य दर्शयिष्यामि स्वरूप वेदिगोपितम् ।।

यदिहं मे त्वया दृष्टं रूप दिव्यं सनातनम् ।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्द विग्रहम् ।। पद्म पुराण

1. पूर्ण पद्मपलाशाक्षं नातः परतरं मम ।
इदमेव वदन्त्यैते वेदाः कारणकारणम् ।।
सत्यं नित्यं परमानन्द चिद्धनं शाश्वतं शिवम् ।। पद्म पुराण

प्राप्त होता है। पद्म पुराण में रामावतार से सम्बन्धित जिस कथा का चित्रण हुआ है, वह परवर्ती साहित्य से कुछ भिन्न है। भगवान् विष्णु ने राजा दशरथ से कहा कि 'मैं तुम्हारी पत्नी कौशल्या से जन्म ग्रहण करूँगा। इसके अनन्तर भगवान् हरि ने चरु में प्रवेश किया था। उस चरु के चार भाग करके राजा ने एक-एक भाग चारों भार्याओं को दे दिया। इसके पश्चात् कौशल्या से राम सुमित्रा से लक्ष्मण सुरूपा से भरत और सुवेषा से शत्रुघ्न ने जन्म ग्रहण किया।[1]

भगवान विष्णु ने ऋषियों के यज्ञों को राक्षसों द्वारा नष्ट होते देखकर सकल भूतल को निश्चिरहीन करने का प्रण किया। पद्म पुराण के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने असंख्य बलशाली राक्षसों का वध करने के पश्चात् जब विश्रवा सुत रावण का वध करने में असमर्थ हो गये तो उन्होने विभीषण के मुख की ओर देखा। विभीषण ने श्री राम को संङ्केत से रावण की नाभि में विद्यमान अमृत को बता दिया। पुनः श्री राम ने रावण की नाभि को लक्ष्य करके बाण चलाया और रावण

---

1. तव पुत्रो भविष्यामि कौशल्यायाम्। अथ चरुं प्रविशद्धरिः। तं चरुं हि चतुर्धा विभज्य भार्याभ्यो दत्तवान्। अथ कौशल्यायां रामो लक्ष्मणः सुमित्रायं सुरूपायां भरतः सुवेषायां शत्रुघ्नो जज्ञ।

पद्म पुराण - द्वितीय खण्ड/10

का वध किया । अन्त में, श्री राम ने दुर्दान्त राक्षस कुम्भकर्ण का भी वध किया ।[1]

आनन्दकन्द सच्चिदानन्द भगवान् श्री राम पृथिवी को दुष्टों के भार से मुक्त करके अपनी प्रिया लक्ष्मी के साथ अयोध्यापुरी में निवास करने लगे ।[2]

वैदिक साहित्य में विष्णु के पाँच अवतारों मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह

---

1. अथ रावणः रावणं महाबलं हन्तुमशक्तो रामो विभीषणमुखमवलोक्य तदुक्तचिन्हपद बाणेन निभिद्यामारयत् । अथ कुम्भकर्णो महागदामादाय सर्वं निष्पाद्य वानराननेकशो भक्षयित्वा रामोत्तमाङ्गः गदया हन् अथ रामो निशितबाणशतेन तमहन्ममार कुम्भकर्णः ।

पद्मपुराण - द्वितीय खण्ड / 9

2. राक्षसं हत्वा श्रियासह सुखी भवेद्युदीर्य अयोध्यापुरीम् निवसत् ।

वही - द्वितीय खण्ड/32

तथा वामन का उल्लेख प्राप्त होता है । विष्णु के अन्य अवतारों के विषय में वैदिक वाड्मय पूर्णतः मौन है । पुराणों में विष्णु के दशावतार का वर्णन विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्राप्त होता है । विष्णु पुराण में इनके दश अवतारों में मत्स्य कर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, राम, बुद्ध कृष्ण तथा कल्कि का उल्लेख हुआ है । भागवत पुराण में विष्णु के अवतार को दो रूपों में निरूपित किया गया है । 1. पूर्णावतार 2. अंशावतार ।

पूर्णावतार में तो कूर्म आदि दश मुख्य अवतारों का वर्णन है । आंशावतार के अन्तर्गत नारद, कपिल, सनत कुमार दत्तात्रेय पृथु, व्यास आदि । विष्णु के अवतार सम्बन्धी आख्यानों का न्यूनाधिक वर्णन प्रायः सभी पुराणों में पया जाता है और पुराणकारों ने एक-एक अवतार के नाम पर एक-एक पुराण रच दिये हैं । परन्तु इस सम्बन्ध में सर्वाधिक गम्भीरतापूर्ण विवेचन श्री मद् भागवत की है - सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा होते ही महत्तत्त्व से निष्पन्न पुरूष रूप

---

1. जे0 म्यूर: ओरिजनल संस्कृत टैक्स्ट्स भाग 4 पृष्ठ संख्या- 156 से 158

2. श्रीमद् भागवत पुराण 1/3/6 से 25 तक

ग्रहण किया । विष्णु के इस विराट् रूप से समस्त, अवतार प्रकट हुए । जिनमें दश अवतारों का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं । श्रीमद् भागवत में विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है । जिनमें बाईस अवतारों का वर्णन प्रथम स्कन्ध में किया गया है। तथा शेष दो अवतारों का वर्णन द्वितीय स्कन्ध में किया गया है ।[1] वस्तुतः भागवतकार ने अन्त में स्वयं ही कह दिया कि भगवान के असंख्य अवतार हैं ।[2] वैदिक वाङ्मय में विष्णु की एक ऐसी परम शक्ति के रूप में कल्पना की गयी है जो सदा अजन्मा व अमर है । किन्तु विष्णु को पुराणों में अमर होते हुए भी लोक कल्याणार्थ प्रकट होते दिखाया गया ।

सूर्य का उदय और अस्त होता है उसी प्रकार देवों का भी उदय एवम् तिरोहित होता है ।[3] वायु पुराण के अनुसार विष्णु, ब्रह्मा और महेश का भी अविभार्व एवम् तिरोभाव होता है ।[4] अन्य पुराणों में भी सर्वत्र विष्णु को कालजयी

---

1. श्रीमद् भागवत पुराण 2/7

2. अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः ।

   यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्त्रशः ।। वही 2/7

एवम् अमर कहा गया है । विष्णु निर्विकल्प निर्गुण एवम् सर्वगुणातीत है । ब्रह्मा और शिव भी उसी आदि शक्ति से उत्पन्न होते हैं, और महाप्रलय काल में उसी में विलीन हो जाते हैं । पुराणों में बहुत सी कथाएँ ऐसी भी हैं जिनका संकेत वैदिक वाङ्मय में नहीं है, वे बिना किसी पूर्व आधार के अपने इष्ट देव को प्रसन्न करने तथा उनके उत्कर्ष को सूचित करने के लिए गढ़ ली गयी है । वायु तथा शिव पुराण में एक कथा आती है जिसमें कहा गया है कि सृष्टि के आदि में जब ब्रह्मा और विष्णु में पारस्परिक वरिष्ठता का निर्णय करने के लिए विवाद होने लगा, उसी समय एक दीर्घ शिवलिङ्ग प्रकट हुआ । जब ब्रह्मा और विष्णु उसका पता नहीं लगा पाये, तो शिव ने प्रकट होकर विष्णु को उपदेश दिया और उन्हें अपना अंश घोषित कर दिया।

विष्णु पुराण में एक कथा के अनुसार बाणासुर के प्रसंङ्ग में विष्णु रूप कृष्ण और शङ्कर का भीषण युद्ध होता है, शिव थक कर चूर हो जाते हैं और कृष्ण उन पर विजय प्राप्त करते हैं ।

---

1. तेषामपीह सततं निरोधोत्पतिरुच्यते ।

   यथा सूर्यस्य मैत्रेय उदयस्तमनाविह ।।

   एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे-युगे ।। विष्णु पुराण 1/115-140

2. वायु पुराण 66

वैदिक साहित्य से भिन्न कुछ नवीन देवताओं की कल्पना भी पुराणों में की गयी है। प्रकृति के किसी भी महत्त्वपूर्ण वस्तु और मानसिक भाव आदि को देवता के रूप में मूर्त्त मान लेना, पुराणों के लिए सर्वथा सहज एवम् स्वाभाविक है। यथा पृथिवी देवी का गौ रूप में चित्रण[1] तथा वेदों का मानव रूप में प्रवचन करते हुए वर्णन[2] किया गया है। दुर्गा, स्कन्द, गणेश, हनुमानादि ऐसे ही देवी-देवता है जिनकी उपासना पौराणिक काल में जन्म लेकर आज भी सनातन धर्म में विस्तृत रूप से प्रचलित है। इन देवी देवताओं का स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व होने के वावजूद भी, इन्हें उसी परमतत्त्व विष्णु का अंश बताया गया है। अतः पुराण के आराध्य सभी देव परम शक्तिशाली भगवान् विष्णु के ही अनेक रूप हैं।

वेदों तथा पुराणों के सम्यक् पर्यालोचन से स्पष्ट हो गया है कि विष्णु सदैव दोषमुक्त हैं। वह नित्य हैं, समस्त चेतन एवम् अचेतन भूतों में व्याप्त हैं। समस्त भूतों के अन्तर्यामी हैं। ज्ञान, शक्ति आदि सभी गुणों से युक्त हैं, जगत्

---

1. श्रीमद् भागवत् पुराण 1-17

2. ब्रह्मपुराण 127

के स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं । विष्णु उन लोगों से भी उपसेवित हैं, जो आर्त्त जिज्ञासु, अर्थार्थी एवम् ज्ञानी हैं । विष्णु चतुर्विध पुरूषार्थों के दाता हैं । वह अद्भुत दिव्य विग्रह एवम् अनतिक्रमणीय सौन्दर्य से सम्पन्न हैं । श्री, लीला एवम् भू उनकी श्रेष्ठ शक्तियाँ हैं । उनके परमपद में अमृत का उत्स है । सांसारिक वासनाओं को त्याग कर ज्ञानीजन निरन्तर उपासना के द्वारा दयालु विष्णु के उस परम पद को प्राप्त कर आनन्दित होते हैं ।

विष्णु का महत्त्व वैदिक काल की अपेक्षा पौराणिक काल में अधिक था । ऋग्वेद में प्राकृतिक शक्ति की मानवीकरण तथा यजुर्वेद में निष्पादित यज्ञों के धारक एवं अथर्ववेद में भ्रूण रक्षक विष्णु, ब्राह्मण ग्रन्थों में उच्चतम स्थान प्राप्त कर लिये थे । आरण्यक साहित्य में प्राणविधा के विस्तृत निरूपण तथा औपनिषद साहित्य में आत्मा एवंम् ब्रह्म के चरमोत्कर्ष के कारण विष्णु नाममात्र के देव रह गये थे । पौराणिक साहित्य के मनीषियों ने जब इनके पवित्र वैदिक स्वरूप को रूपेण जानने का प्रयास किया तो इनके निर्मल एवम् निर्विकल्प ने उन विद्वानों को अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया । कुछ समय पश्चात् इन्हीं क्रान्तद्रष्टा मुनियों ने विष्णु के उत्तम स्वरूप को आख्यानों एंव उपाख्यानों का रूप देकर मानव के लिये ग्राह्य बना दिया । जिससे वैदिक देव विष्णु पौराणिक काल के प्राणियों के लिए भी वरद वरिष्ठ एंव वरेण्य हो गये हैं ।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

विष्णु के महावितान की छाया में ही विश्वमानव की रचना हुई है। भारत ही नहीं अपितु विश्व की चिरन्तन प्रज्ञा ने इस देवत्व को सदा प्रणाम किया है। अपने उस प्रणम्य भाव एवम् नमन को समर्पित करने के लिए प्रणम्य की अनेक नामों से स्वीकृति वैदिक वाड्मय में सर्वत्र पायी जाती है। ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वरुण प्रजापति और सूर्यादि उसी परम शक्ति को बहुविधि संज्ञायें हैं। परम तत्त्व विष्णु दीर्घकालिक वैदिक वाड्मय के वे सुरभित पुष्प हैं, जिनके मूल में एक ही महासौगन्धिकपद्म की अखण्ड सत्ता है। वह अनादि एवम् अनन्त हैं।

यह अमृत तत्त्व विष्णु सर्वोपरि सर्वाभिमानी और सब में पिरोया हुआ सर्वान्तर्यामी है। युग-युग के सन्तों की साधना ने और कवियों की सरस्वती आराधना से इसी परम देव की बहुमुखी प्रशंसा की है। इस परमतत्त्व के स्वतन्त्र सत्ता की पल-पल में आवश्यकता है। जीवन की बहुमुखी समृद्धि इसी सत्य से सम्भव हुई और आज भी हो रही है। यह निर्विवाद है कि भगवान् विष्णु मानव मात्र के मित्र एवम् प्रेरक हैं। यही परब्रह्म के रूप में प्राणियों को मोक्ष भी प्रदान करते हैं। समस्त वैदिक साहित्य अमृतमय वचनों से युक्त है। जिसमें मानव मात्र के कल्याण की

का अभाव तथा अनेक वैदिक कथाओं में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका तथा उनके सूक्ष्म एवम् पूर्व मानवीकरण ने उन्हें परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया है ।

विष्णु की सबसे बड़ी विशेषता माया को अत्मसाद् करना है । माया विष्णु की वह दिव्य शक्ति है जिसके सहायता से वे विश्व के जीवों को आकृष्ट करते रहते हैं । यद्यपि यह सच है कि विष्णु के सृष्ठि में उनकी उतनी सहायिका नहीं है, जितना कि प्राणियों को मोहित करने में केवल मानव ही नहीं वरन् विष्णु के इस माया निर्मित स्वरूप पर ब्रह्मा और भगवान शंकर भी मुग्ध हो जाते हैं । भगवान् शंकर त्रिपुर विनाश के समय असुरों को माया से मोहित कर, मायानिर्मित अमृत सरोवर का पान कर जाते हैं । वैदिक साहित्य के अध्ययन के पश्चाद् यह स्पष्ट हो गया कि विष्णु एक ऐसे दयालु देव हैं, जिनका स्वभाव रक्षा, सहायता और उद्धार करना है । चाहे वृत्र वध के लिये इन्द्र की सहायता करना हो या बलि को छलने के लिए वामन रूप धारण करके पाद प्रक्षेप करना हो या फिर त्रस्त मानवता के उद्वार के लिए अवतार धारण करना हो । भगवान् विष्णु ने सर्वदा देवताओं तथा मनुष्यों की रक्षा की है । इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये महाप्रलय के समय प्रकट होकर पृथिवी को जल में डूबने से बचाते हैं । विष्णु ने शूकर कच्छप और मछली जैसे मानवेतर रूप में अवतार लेकर मानव के अस्तित्व की रक्षा की

है ।[1] आज भी सृष्टि की रक्षा कर रहे हैं । अतः विष्णु, वरद, वरिष्ठ एवम् वरेण्य हैं । अपने बढ़ते हुए तेज एवम् ओजस्विता के कारण विष्णु का सूर्य से तादात्म्य कर दिया गया और विष्णु को भौतिक सूर्य का आधि दैविक रूप माना जाने लगा । वैदिक काल में सूर्य और विष्णु के लिए समान विशेषणों का प्रयोग ऋचाओं में प्राप्त होता है । वस्तुतः सूर्य की किरणे भूमण्डल, वायु एवम् आकाश तीनों स्थानों में समान रूप से व्याप्त करती हैं और विष्णु का चरणन्यास भी इसी क्रम में होता है ।[2] सूर्य और विष्णु दोनों अपनी शक्ति से तीनों लोकों में व्याप्त होते हैं ।

अतः दोनों का एकीकरण हो जाना सहज एवम् नितान्त स्वभाविक है । विष्णु का प्रकाश शील देव होने के कारण विद्युत एवम् अग्नि से भी तादात्म्य हो गया है । अग्नि तथा विष्णु के लिए भी समान विशेषण प्रयोग हुए हैं । कालान्तर में विष्णु का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया कि इनकी पूजा यज्ञाधिष्ठातृ देव के रूप में होने लगी और 'यज्ञों वै विष्णुः' यज्ञ ही विष्णु हैं,[3] यह धारणा

---

1. तैत्तिरीय संहिता 7/1/5/1, अथर्ववेद 12/1/48, शतपथ ब्राह्मण 15/1/2/11
2. ऋग्वेद 5/8/13, 1/154/1
3. शतपथ ब्राह्मण 1/1/2/13

तात्कालिक समाज में विश्वसनीय हो गयी । मानव स्वभाव से ही किसी न किसी देव के ऊपर अपने कर्मफल को छोड़ देता है । इस समय भी जन मानस की यह धारणा थी कि भगवान विष्णु कर्म का फल देने वाले श्रेष्ट देव हैं । उस समय मानव के पास विष्णु को खुश करने का सहज उपाय यज्ञानुष्ठान था । यज्ञों में हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए विष्णु का अह्वान किया जाता था और भगवान् स्वयमेव यज्ञों में आकर हविष्यान्न ग्रहण करते हुए आनन्दित होते थे । विष्णु प्रसन्न मुद्रा में प्राणियों के मनो कामनाओं को पूर्ण करते थे । पुत्रेष्टि यज्ञ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

विष्णु अपने मृदुल एवम् उदार स्वभाव के कारण समग्रसृष्टि में इतने लोकप्रिय हो गये कि अल्पकृत्यों में भी इनका आह्वान होने लगा । गर्भाधान संस्कार में गर्भस्थ शिशु की रक्षा तथा पुत्रोत्पत्ति में समर्थ स्त्री के योनि को प्रथित करने के लिए कामना की जाने लगी । यही कारण है कि इस पवित्र एवम् महान् देव को सिनी-वालि जैसी साधारण देवी का पति भी कहा जाने लगा । यद्यपि इससे विष्णु का अपकर्ष नहीं वरन् उत्कर्ष ही हुआ । धीरे-धीरे विष्णु जनमानस के आराध्य देव हो गये और सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के एक मात्र देव समझे जाने लगे । परवर्ती साहित्य में भगवान् विष्णु को अनादि, अनन्त, अचिन्त्य, अप्रमेय, अजन्मा, अविनाशी, निर्वि-कल्प, सगुणरूप में निर्गुण निराकार, सर्वज्ञ, क्रतु, यज्ञ, स्वधा, आनन्दचिद् घन,

षडैश्वर्यरूप, चराचर वन्दित, परमानन्द दायक एवम् परमपवित्र के रूप में निरूपित किया गया, जो आज भी सगुण एवम् निर्गुण रूपों में विद्वज्जनों को ही नहीं अपितु सर्व साधारण को मान्य है ।

---------::0::---------

अधीत ग्रन्थ-माला

क. वैदिक ग्रन्थ

ख. पौराणिक ग्रन्थ

ग. सहायक ग्रन्थ

घ. अंग्रेजी ग्रन्थ

अधीत ग्रन्थ-माला

क. वैदिक ग्रन्थ

1. अथर्ववेद में सांस्कृतिक तत्व, पञ्चनद प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1962
2. अथर्ववेद संहिता, स्वाध्याय मंडल, सतारा, सन् 1956
3. अथर्ववेद संहिता, सौनक शाखा, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, सन् 1916
4. ऋग्वेद में यज्ञ कल्पना, जयपुर प्रकाशन, सन् 1965
5. ऋग्वेद संहिता, सायणभाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, सन् 1936
6. ऐतरेयारण्यक, आनन्द आश्रम, पूना, सन् 1966
7. ऐतरेयब्राह्मण सायणभाष्य, आनन्द आश्रम, पूना, सन् 1989
8. काठक संहिता, स्वाध्यायमण्डल, सतारा, सन् 1943
9. काण्व संहिता, स्वाध्यायमण्डल सतारा, सन् 1943
10. कौषीतकि ब्राह्मण सायणभाष्य, वेपर्स वेडन प्रकाशन, सन् 1968
11. गोपथ ब्राह्मण, इण्डोलाजिकल हाउस, दिल्ली, सन् 1972
12. जैमिनीय ब्राह्मण, नागपुर प्रकाशन, सन् 1956
13. तैत्तिरीयारण्यक सायणभाष्य, कलकत्ता प्रकाशन, सन् 1976
14. तैत्तिरीयब्राह्मण सायणभाष्य, आनन्द आश्रम, पूना, सन् 1989
15. मैत्रायणी संहिता, बाँकेबिहारी प्रकाशन, आगरा, सन् 1986
16. यजुर्वेद भाष्यम्, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, सम्वत् 2017

17. यजुर्वेद संहिता सायणभाष्य, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, सन् 1915

18. विष्णु स्मृति, बसन्त प्रेस थीयोसाफिकल सोसायटी, मद्रास, सन् 1946

19. बृहदारण्यक सायणभाष्य, कलकत्ता प्रकाशन, सन् 1978

20. वैदिक देवशास्त्र, संस्कृत संस्थान, बरेली, सन् 1961

21. सामवेद, स्वाध्यायमण्डल, पारडी, विक्रमसंवत् 2020

22. सामवेद सायणभाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1938

23. संस्कृत-हिन्दी कोश, बंगला रोड जवाहर नगर, दिल्ली, सन् 1966

24. शतपथ ब्राह्मण सायणभाष्य, वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् 1940

25. हलायुध कोश, सरस्वती भवनमाला, वाराणसी, सन् 1813

ख. पौराणिक ग्रन्थ

26. अग्निपुराण, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, सन् 1957

27. अग्निपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सन् 1991

28. कूर्म पुराण, इण्डोलाजिकल बैक हाउस, वाराणसी, सन् 1968

29. पद्मपुराण, संस्कृत संस्थान, बरेली, सन् 1968

30. बाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2010

31. मत्स्यपुराण, संस्कृत संस्थान, बरेली, सन् 1969

32. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2033

33. वराहपुराण, इण्डोलाजिकल बैंक हाउस, वाराणसी, सन् 1967

34. विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सन् 1987

35. विष्णु पुराण, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, सन् 1957

36. शिशुपाल वध, निर्णयसागर, बम्बई, सन् 1898

37. हरिवंश पुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सम्वत् 2019

38. श्रीमद् भागवत् महापुराणम्, गीता प्रेस, गोरखपुर, सन् 1990

ग. सहायक ग्रन्थ

39. उपनिषद् काव्य कोश, जे०ए० जैकब, मोतीलाल, बनारसीदास, बम्बई, सन् 1963

40. ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन, डॉ० नाथूलाल पाठक, जयपुर प्रकाशन, सन् 1966

41. पौराणिक कोश, राम प्रसाद शर्मा, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, संवत् 2018

42. पौराणिक धर्म एंव समाज, डॉ सिद्धेश्वरी नारा, पञ्चनद प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1968

43. भारतीय समाज शास्त्र मूलाधार, डॉ० फतह सिंह, सन् 1966

44. भारतीय संस्कृति एंव साधना, डॉ० गोपीनाथ कविराज, राष्ट्र भाषा परिषद बिहार, 1969

45. वाल्मीकि-रामायण कोश, राम कुमार राय, चौखम्भा प्रकाशन, काशी, सन् 1965

46. वेदार्थ के विविध प्रक्रियाओं का ऐतिहासिक अनुशीलन, डॉ युधिष्ठिर मीमांसक, वेदवाणी, काशी, सन् 1964

47. वैदिक वाड्मय का इतिहास, पं0 भगवद्दत, अमृतसर प्रकाशन, सम्वत् 2013

48. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पं0 गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पटना, सन् 1969

49. वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, कैरेला-बाग, सन् 1969

50. वैदिक साहित्य का इतिहास, डॉ0 कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार, सुभाष-बाजार, मेरठ, सन् 1958

51. वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1973

52. वैष्णव शैव एवं अन्य धार्मिक मत, राम कृष्ण गोपाल भण्डारकर, (अनुवादक सिद्धेश्वरी प्रसाद), भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1883

घ. अंग्रेजी ग्रन्थ

53. आन द वेद, श्री अरविन्द, अरविन्दो आश्रम, पाण्डिचेरी, सन् 1964

54. आस्पेक्ट्स, जे0 खोण्डा,

55. ओरिजनल संस्कृत टैक्सट, जे0 मयूर

56. ऋग्वेद इण्डिया, ए0सी0 दास

57. रिलिजन आवॅ द वेद, ब्लूम फील्ड, पूना, सं0 2020

58. रिलिजन ऑव द इण्डिया, सर हापकिन्स

59. वैदिक इण्डैक्स, मैकडानल तथा कीथ, मोती लाल बनारासीदास, बम्बई, सन् 1958

60. वैदिक विब्लोग्राफी, आर०एन० दण्डेकर, पूना, 1947

61. सैक्रिफाइज इन द वेद, डॉ० के० आर० पोतदार, बम्बई, 1953

62. संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, सर मोनियर विलियम्स, दिल्ली, 1943

---------::0::---------